

MINOR RESEARCH PROJECT



**‘सांख्य तथा वैशेषिक दर्शनानुसार
सृष्टी उत्पत्ति विषयक मतों का तुलनात्मक अध्ययन’**



sanctioned under the scheme UGC XI Plan
(2007-2012)

‘Financial assistance to college teachers For undertaking
Minor Research Project ’

By

Assot. Prof.Dr Sunil Vasantrao Salunke,

Department of Philosophy,

Dayanand College of Arts,Latur. 413531(M.S)



**University Grants Commission,
Western Regional Office,
Ganesh Khind, Pune.**



November -2015

अनुक्रम

१.	विषयप्रवेश	5
२.	भारतीय दर्शन में सृष्टि उत्पत्ति का चिंतन	21
३.	सांख्य दर्शन में इस समस्या का चिंतन	35
४.	वैशेषिक दर्शन में इस समस्या का चिंतन	51
५.	सांख्य तथा वैशेषिक मतों की तुलना	63
६.	निष्कर्ष	70
	संदर्भग्रंथ	

CERTIFICATE

This is to certify that Minor Research Project entitled
‘सांख्य तथा वैशेषिक दर्शनानुसार सृष्टी उत्पत्ती विषयक मतों का तुलनात्मक
अध्ययन’ sanctioned under the scheme UGC XI Plan (2007-
2012) ‘financial assistance to college teachers For undertaking
Minor Research Project ’ to Associate Professor.Dr Sunil
Vasantrao Salunke, Department of Philosophy, Dayanand
College of Arts,Latur. 413531(M.S) by University Grants
Commission,Western Regional Office, Ganesh Khind, Pune
vide letter file no.23-3037/11 (WRO), has been completed by
Asso. Prof. Dr. Sunil Vasantrao Salunke as per the guidelines
of the UGC-WRO, Pune.

Principal

Date: 26/11/2015

(Dr. J.M.Bisen)

Place : Latur

DECLARATION

This is to certify that Minor Research Project entitled ‘सांख्य तथा वैशेषिक दर्शनानुसार सृष्टी उत्पत्तीविषयक मतों का तुलनात्मक अध्ययन’ sanctioned under the scheme UGC XI Plan (2007-2012) ‘Financial assistance to college teachers For undertaking Minor Research Project’ to me by University Grants Commission, Western Regional Office, Ganesh Khind, Pune vide letter file no.23-3037/11 (WRO), has been completed as per the guidelines of the UGC-WRO, Pune. The present work has not formed the subject of any work either in whole or part. The citation used in this work have been duly acknowledged and the same have been noted in the bibliography.

Principal Investigator

Dr.Sunil.V.Salunke

Associate Professor,

Dayanand College of Arts Latur.

१.

विषयप्रवेश

दर्शन का उद्भव मानव की जिज्ञासा से हुआ ऐसा माना जाता है। आदिमानव पृथ्वीपर अस्तित्व में आया तो निसर्ग में घटनेवाली निसर्गरम्य घटनाओं से वह अल्हादित हुआ, वैसे ही निसर्ग में ही घटनेवाली भयप्रद घटनाओं से वह डर भी गया। नभोमंडल में उदयास्त होनेवाले चंद्र, सुर्य तथा अनंत तारकासमुह देखकर उसका मन हर्षोल्हसित हुआ वैसे ही बिजली की चमक, मेघ गर्जना, जंगल में अचानक लगनेवाली आग देशकर वह भयग्रस्त भी हुआ। धरा पर चलने वाले कुछ सुंदर और सौम्य स्वभाव के प्राणी देखकर वह प्रसन्न हुआ, वैसे ही क्रुर प्राणी देखकर वह सहम भी गया। आदिमानव की इस अवस्था में भी उसके मन में प्रश्न उपस्थित हुआ होगा की निसर्ग में यह विविधता कैसी उत्पन्न इन सब का निर्माण कैसे हुआ? कौन है इस निर्माण का निर्माता? इसी जिज्ञासा से ही दर्शन का आरंभ हुआ होगा। काल के प्रवाह में इसमें अन्य विचारधाराएँ संमीलीत हुई और उसका ही विस्तृत, अथांग स्वरूप आज दर्शन के रूप में देखने को मिलता है।

प्राचीन भारतीय तथा ग्रीक दर्शन का अवलोकन किया जाय तो आंरभकाल से आज की परिणत अवस्था तक विचारों के विविध स्तर दिखाई देते हैं। भारत में ऋग्वेद में ऐसे ही दार्शनिक अथवा तात्त्विक विचार दिखाई देते हैं। यही प्रथा प्राचीन होमर, हिसिअॉड आदी के काव्यों में दिखाई देती है। यद्य पि ऋग्वेद अथवा ग्रीक काव्यों में विचार कम और काल्पनिकता का प्रमाण अधिक है। फिर

भी उसमें से कुछ प्राथमिक संकल्पनाएँ जैसे ईश्वर इस सृष्टि का निर्माता है, देखने को मिलती है।

मनुष्य की जिज्ञासा अखंडित चलनेवाली प्रक्रिया है। एक प्रश्न का उत्तर मिल गया तो दूसरा प्रश्न अपने आप निर्माण होता है। ‘सृष्टि निर्माण के पिछे कोई ईश्वर है और उसकी आज्ञासे ही सब गतिविधीयाँ चलती है’ इस विचार से मिलनेवाला समाधान अधिक काल तक नहीं चल सका। भारतीय तथा ग्रीक दर्शन के आगे दुसरा प्रश्न उपस्थित हुआ। सृष्टि में जो घटनाएँ प्रतीत हुई उसमें दर्शनिकोंको विविधता दिखाई दी, परंतु उसमें संगती, सुसूत्रता दिखाई नहीं दी। स्वभावतः उनके मन में यह प्रश्न उपस्थित हुआ की उन घटनाओं में संगती, सुसूत्रता है या वे आकस्मिक (Accidental) घटती है? इस विचार ने उनकी दृष्टी इंद्रियगोचर, दृश्य पदार्थों की ओर खींच ली। अपने चारों ओर प्रतीत होनेवाले पदार्थोंका आदितत्त्व क्या है? इन पदार्थों का निर्माण किस पदार्थ से हुआ है? इस प्रश्न का वे समाधान ढूँढने लगे।

प्राचीन विचारधारा :

ग्रीक दर्शनिकों में इस प्रश्न का हल ढूँढने वाला प्रथम दार्शनिक थेलिस था। इसी कारण उसे दर्शन का जनक (Father of Philosophy) माना गया। उसके मतानुसार “सब कुछ जलसे निर्माण होता है और अंततः उसमें ही विलीन होता है।”¹ भारतीय दर्शन का आरंभ ऐसे ही उपनिषद से हुआ। उपनिषदों के प्रणेताओंने ऐसा ही आदितत्त्व खोजने का प्रयास किया।

ग्रीक तथा भारतीय दर्शनिकोंके इस प्रश्न विषयक विचार प्रारंभिक काल में कुछ मतभेदों के बावजूद अधिकांश रूप से समान थे। उसके बाद भारतीय दर्शनिक आगे निकल गये। श्वेताश्वत-रोपनिषद में उसके प्रणेता ने “हम किसचीज से उत्पन्न हुए? हम किस ची में रहते है? और हमारी स्थिरता किस चीज से है?”² ऐसा प्रश्न उपस्थित किया है। तैतरीय उपनिषद में भी ऐसा ही प्रश्न आया है।

“जहाँ से सभी जीव उत्पन्न होते हैं, जिसकी वजह से वे जन्म लेकर जीवन व्यतीत करते हैं, जीसकी तरु जाकर वह पुनःउसमे विलीन होते हैं, वही सत् है।”^३ यह सत् तत्त्व जल है ऐसा उत्तर बृहदारब्यक्त उपनिषद मे मिलता है। “आरंभ मे केवल जल ही था, जल से ही सत्य उत्पन्न हुआ।”^४ यह सब विचार ‘सबकुछ जल से निर्माण हुआ’ इस बात की ओर संकेत करता है।

थोलिस के बाद अँनिकिसमैडर यह दार्शनिक आया। ‘सत् तत्त्व एक ही है’ इस थोलिस के विचार का उसने खंडन किया। एक ही तत्त्व से विभिन्न रंग, रुची एवं गुणों की वस्तुएँ कैसी निर्माण हो सकती हैं? और वह तत्त्व जल ही क्यो? ऐसा उसका सीधा प्रश्न था। उसके अनुसार सभी पदार्थोंसे सत् तत्त्व बिलकुल अलग होना चाहिए। उसका यह तत्त्व वेदान्त दर्शन के ‘ब्रह्म’ जैसा एक ही था। उसने उसे ‘किमपि अनवच्छिन्नम’(Boundless something) यह नाम दिया। इसी तत्त्व से समुचि सृष्टी तथा सृष्टी के पदार्थोंका निर्माण हुआ। इस तत्त्व पर आधारित सृष्टी के संबंध में उसने एक महत्वपूर्ण सिधांत का विवेचन किया। वो कहता है, “जो कुछ भी है उसका निर्माण इसी ‘अनवच्छिन्नम’ से होता है। जो जहाँसे निर्मित होता है, वह अनिवार्यतः उसी में विलीन होता है। क्यों की विश्व के सभी पदार्थ एक दुसरे के नुकसान का खामियाजा देकर एक दुजे को समाधान देते हैं।”^५ आधुनिक विज्ञान का Law of compensation इसी सिधांत में अनुस्थूत है।

सत् तत्त्व से विषय मे चिंतन करनेवाला तिसरा दार्शनिक अँनेकिङ्गमिनीज है। उसके अनुसार ‘वायु’ सत् तत्त्व है। हमारे शरीर मे जो ‘आत्मा’ नाम से रहता है और जो हमारे शरीर का घटकतत्त्व है, वही विश्व को संघटीत करता है। “जिस तरह से वायु से बना आत्मा शरीर की धारणा करता है, उसी तरह श्वास तथा वायू जगत की धारणा करते हैं।”^६ भारतीय उपनिषद में भी वायु को मूलभूत तत्त्व के रूप में स्वीकारा गया है। छांदोग्य उपनिषद मे रैकव जानश्रुती राजा को कहता है, “वायु ही सभी को विलीन होते हैं। अग्नी शमीत होकर वायु में

संमीलीत होता है, चंद्र अस्तंगत होकर तथा जल भी सूखकर वायु में विलीन होता है।”⁹

यहाँ तक के तीनों ग्रीक दार्शनिकों के विचार भारतीय उपनिषदों में समान रूप से दिखाई देते हैं, ऐसा हमने देखा। परंतु उपनिषदों का कालखंड ग्रीक दार्शनिकों के बहुत पहले का है। फिर भी दोनों विचारों की धाराएँ समान रूप से कही दिशा में बह रही थी। वेदों में पाये जानेवाले अग्नि, वायू आदि देवताओं की जगह पीछे छूटकर सृष्टि निर्माण का विचार उपनिषदों में थोड़ा अलग पाया जाता है। ग्रीक दार्शनिकों ने भी होमर की देवताओं को पीछे छोड़कर सत् तत्त्व के बारे में एक नयी दिशा अपना ली। पदार्थों को सारतत्त्व, सत् तत्त्व कौन सा है इस प्रश्न को अपनाया गया। मुंडकोपनिषद में यही प्रश्न पूछा गया है, की “जिसका ज्ञान होने के बाद पदार्थों का ज्ञान होता है, वह क्या है?”¹⁰

ग्रीक तथा भारतीय दार्शनिकों का सत् तत्त्व प्रारंभिक अवस्था में भौतिकता के आगे नहीं जा पाया। उनके सत् तत्त्व भौतिक थे। कालांतर से इन विचारों में व्यापकता आयी। लेकिन उपनिषद के प्रणेताओंने इस बार ग्रीक दार्शनिकोंको पीछे छोड़ दिया।

दर्शन के इतिहास में पायथँगोरस का नाम सुप्रसिद्ध है। पायथँगोरस मूलतः दार्शनिक ना होकर धार्मिक पंथ का संस्थापक था। फिर भी उसने दर्शन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है। पायथँगोरस ने अंको को सत् तत्त्व के रूप में स्वीकारा। अर्थात् उसका अंकवाद तर्कहीन तथा भ्रामक था। फिर भी सत् तत्त्व की खोज में भौतिक तत्त्वों से अलग अभौतिक तत्त्व की ओर जानेवाला उसका विचार अन्य दार्शनिकोंको प्रेरणादायी बना।

सॉक्रेटिस पूर्व कालखंड में पायथँगोरीयन विचारधारा के साथ एलिअंटिक विचारधारा भी थी। इनॉफिनस ने इसकी शुरुआत की। पार्मिनीडीज तथा झीना उसके प्रमुख अनुयायी थे। ‘जो है वह एकमात्र है’(What is is one) यह उनकी धारणा थी। पायथँगोरसने द्वितत्त्वाद का आरंभ किया था। फिर भी आयोनियन

एकतत्त्ववाद भी प्रचलीत था। यहीं से सत् तत्त्व एक या अनेक? अस्तीत्व या निर्माण? स्थिर या गतीमान? ऐसे प्रश्न विचार का केंद्र बन गये। सार रूप से देखा जाय तो सॉक्रेटिस पूर्व दार्शनिकों के चिंतन में सृष्टि तथा उसमें पयो जानेवाले पदार्थोंका सातत्व ढूँढने का प्रयास ही दिखाई देता है। यह सत् तत्त्व प्रमुखता से भौतिक तथा दृश्य थे। उसके आगे जाकर कुछ दार्शनिकों ने मानवीय मन के अंदर झाँकने का प्रयास किया। पायथँगोरस का ‘अंक’ इसी का उदाहरण है। इसके साथ ही एक और दार्शनिक है- हेरॉक्लीट्स।

हेरॉक्लीट्सने ‘अग्नी’(उष्मा) को सत् तत्त्व स्वीकारा। उसके अनुसार सबकुछ अग्नीसे उत्पन्न होता है और अंततः अग्नी मे विलीन होता है। यह विचार आधुनिक ‘शक्ती’(Energy) के सिधांत समान ही है। इस ‘अग्नी’ तत्त्व का विवेचन उपनिषदों में भी देखा जा सकता है। ‘अग्नी से जल, जल से पृथ्वी’^{१०} यह विचार तथा ‘आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नी, अग्नी से आप और आप से पृथ्वी का निर्माण हुआ’^{१०} यह विचार तैतिरीय उपनिषद मे आया है।

हेरॉक्लीट्स के बाद पार्मनायडिस आये। उनके अनुसार सत् पूर्णतः एकरूप (Uniform), अपरिवर्तनीय (Unchangeable), सीमित (Bounded) तथा प्रकाशमान (Luminous) गोलाकार है जो अविभक्त (Without part) होता है। यह सतत्त्व विश्वव्यापी जडतत्त्व (Universal matter) तथा विश्वव्याच्चपी आध्यात्मिक तत्त्व (Universal spirit) दोनों एक साथ है। यह द्वैती विचार भारतीय सांख्यदर्शन के पुरुष और प्रकृति तत्त्व जैसा है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है- शंकराचार्य के अद्वैत मे उनका परतत्त्व सत् (Being) तथा चित् से युक्त है।

सत् तत्त्व के अन्वेषण के प्रयास से भौतिकवाद (Materialism) तथा अध्यात्मवाद (Spiritualism) इन दो विचारधाराओं का उद्भव हुआ। सृष्टि की रचना में आदि तत्त्व क्या हो सकता है? इस चिंतन से एलिंग्टिक दार्शनिकोंने अतिभौतिकी विचारों की प्रतिष्ठापना की। इस विचारने भौतिकवाद का खंडन तथा

अध्यात्मवाद का समर्थन किया। आगे चलकर इसी अध्यात्मवाद में सत् तत्त्व एक से अधिक होते हैं यह धारणा भी बढ़ने लगी।

मेलीसस के अनुसार सततत्त्व आनंदमय है लेकिन उसमें आदिकर्तृत्व अथवा दूसरों पर प्रभाव डालने की शक्ती है। वेदान्त में भी ब्रह्म केवल सत् है, चित तथा आनंद उनके गुण माने गये।

आगे चलकर मेलीसस के विचारों के विपरीत सत् तत्त्व अनेक होते हैं यह विचार प्रस्तृत हुआ। यह विचार महत्वपूर्ण तथा विज्ञान के लिए पोषक बना। एक तरह से यह अणुवाद नींव थी।

अणुवाद का उल्लेख सामान्यतः डेमॉक्रिटस के नाम के साथ किया जाता है। वास्तव में इस विचारधारा का जनक ल्यूकिप्स था। ल्यूकिप्स के अनुसार सत् तत्त्व एक न होकर अनेक होते हैं। यह तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म तथा अदृश्य होते हैं। इन तत्त्वों के मिश्रण से सृष्टि के विविध पदार्थों का निर्माण होता है। ल्युपिक्स के इन विचारों को अधिक अच्छे ढंग से डेमॉक्रिटस ने स्पष्ट किया। इन्होंने बतायी हुई यह अनन्त तत्त्व ही अणुवाद के अणु हैं।

अणुवादीयों के पूर्व अँनॅकझँगॉरस का नाम आता है। वह बहुतत्त्ववादी (Pluralist) था। उसके अनुसार पदार्थों का निर्माण तथा लय नहीं होता और उनके गुणों में परिवर्तन भी नहीं होता। जो अस्तिवत्वान है अनके मिश्रण से पदार्थ बनते हैं तथा उनके विघटन से लय। यानी निर्माण का मतलब संघटन और लय का मतलब विघटन।

सृष्टि के पदार्थ मूलभूत तत्त्वों के मिश्रण से निर्माण होते हैं, और उनमें इनमें सभी तत्त्वों का अंश होता है। यह विचार छांदोग्य उपनिषद के त्रिवृत्करण अथवा वेदों के ‘पंचिकरण’ प्रक्रिया जैसा है। छांदोग्य उपनिषद में आरुणि कहता है, “‘मूलभूत तत्त्व (सत् तत्त्व) एक ही था। उसमें प्रथम अग्नी, बाद में जल व अंततः पृथ्वी का निर्माण किया।’”^{११} उपनिषद ने उन्हे तेजस, आप और अन्न कहा गया है। वह आगे कहता है, “‘सृष्टि के सभी सजीव, निर्जिव पदार्थ इन्हीं तीन

तत्त्वों से निर्माण हुए है। वेदान्त में इन तीन तत्त्वों के साथ वायू और आकाश जोड़कर पंचतत्त्व बन गये, और उनसे पंचिकरण।”

‘शून्य से कुछ भी निर्माण नहीं हो सकता’ यह एक सर्वमान्य विचार था। इसी वजह से दार्शनिक ‘सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ?’ इस प्रश्न का चिंतन करने लगे। ख्याल पौँचवे शतक के अंत में डायॉजिनीस नाम का दार्शनिक था। उसने अँनॉकझेमिनीज तथा अँनॅकिझगोरास के मतों में समन्वयन करने का प्रयास किया। उसके अनुसार सभी पदार्थ एक ही तत्त्व से निर्माण होते हैं। उसमें ही कुछ परिवर्तन हो कर दूसरा निर्माण होता है। और अंततः सभी पदार्थ उसी आदि तत्त्व में विलीन होते हैं।

प्लेटो पूर्व दार्शनिक दो वर्गों में विभाजित होते हैं। पहला वग्र डेमॉक्रिटस तक का और दूसरा सॉक्रेटिस तथा उनके अनुयायी तक का। पहले वर्ग के दार्शनिकों का चिंतन का केंद्र मुख्यतः सत् तत्त्व था। लेकीन दूसरे वर्ग के चिंतन का केंद्र मानव, उसका आचरण, शिक्षा आदि था। इसका मतलब यह नहीं की उन्होंने सत्तत्त्व का चिंतन किया ही नहीं।

सोफिस्ट पंडितों का प्रमुख कार्य लोकशिक्षा था। उन्होंने दार्शनिक चिंतन किया नहीं। फिर भी उन में से एक प्रोटेगोरस था जिस ने कुछ हद तक तात्त्विक चिंतन किया था। सोफिस्टों के बाद सुकरात अया जिसने एक अलग ढंग से तथा शास्त्रशुद्ध रीती से दर्शन की नींव रखी। उसी तरह भारतीय विचारधारा में उपनिषदों के बाद अनेक दर्शनोंका उदय हुआ। जिनका सृष्टि उत्पत्ति विषयक मतों का विवेचन द्वितीय अध्याय में आने वाला है।

सुकरात के अनुसार भौतिक तत्त्व पदार्थों के निर्माण के लिए आवश्यक है, लेकीन वे उनका आदिकारण नहीं हो सकते। उनका आदिकारण प्रत्यय ही हो सकता है। ग्रीक दर्शन का प्रारंभिक चिन्तन भौतिक तत्त्वों के अनुषांगिक था। उसे सही अर्थ में आत्माभिमुख बनाने का श्रेय सुकरात को जाता है। प्लेटो के अनुसार अंतीम सत् निश्रेयस है। वह निःश्रेयस खुद का ही नहीं बल्की सभी प्रत्ययों का

तथा भौतिक पदार्थों का आधार है। ऑरिस्टॉटल के अनुसार परमतत्त्व अथवा परमद्रव्य ही सत् है। वह नीत्य तथा अपरिवर्तनशील है। फिर भी सभी विश्व के सभी परिवर्तनों का कारण है। वह द्रव्यों का द्रव्य है।

२) मध्ययुगीन विचारधारा :

ऑरिस्टॉटल के बाद ग्रीस में राजकीय एवं सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो गया था। ग्रीस अनेक छोटे छोटे टुकड़ों में बँट गया। ग्रीस रोमन साम्राज्य का एक प्रांत बनकर रह गया। पर्शिया के माध्यम से पूर्व की विचारधारा पश्चिम में जोरों से बढ़ने लगी। परिणामतः दर्शन एक तटस्थ विचार न रहकर जीवन जीने का एक साधन बन गया। दर्शन को धर्म के साथ सामंजस्य प्रस्थापित करना पड़ा। दर्शन धर्माभिमुख बन गया। इसी काल में ही व्यक्तीवाद का जोरदार समर्थन किया गया। इस के साथ ही संदेहवादी विचारों का भी उदय हुआ। परिणामतः ईश्वर, जीव, जगत के बारे में संदेश उपस्थित किया जाने लगा। रोमन विजेता व्यवहारवादी थे। दार्शनिक चिंतन में उनका स्वारस्य नहीं था। इसी वजह से दर्शन परमार्थ से व्यावहारिकता की ओर झुक गया।

एषिक्युरस, स्टोइक, संग्रहवादी, नव-प्लेटोवादी ऐसी कुछ विचारधाराएँ इस कालखंड में प्रभावशाली थी। लेकीन उनके विचार ख्रिस्ती धर्म के विरुद्ध थे। इसलिए रोमन समाट जस्टीनियन ने अँकेडेसी पर याबंदी लगादी। इसी तरह से ग्रीक दर्शन की एक स्वतंत्र विचारधारा का युरोप में अस्त हुआ।

मध्ययुग मुख्यतः धर्मसंस्था की प्रबलता का कालखंड था। समुच्चे युरोप पर ख्रिस्ती धर्म का प्राबल्य था। पूरा समाज जीवन ईश्वर संकल्पना से जुड़ गया था। धार्मिक मान्यताओं ने आम आदमी का जीवन बाँधा गया था। चर्च ही सत्ता के एकमेव केंद्र बन गया था। धर्मगुरुओं का शब्द अंतीम शब्द था। परिणामतः ऐसे धर्म में कुछ अंधश्रेष्ठाएँ तथा अकल्पनीय मान्यताओं का निर्माण हुआ। जिसके कारण ग्रीक तथा रोमन विचारकोंने उनकी बौधिक चिकित्सा शुरू की। फलःस्वरूप

इन ख्रिस्ती धर्मगुरुओं को बुध्दीवाद के समर्थन आवश्यकता महसूस होने लगी। वैसे देखा जाय तो ख्रिस्तीयों का स्वतंत्र रूप से दर्शन नहीं था। इसलिए उन्हे उस समय उपलब्ध तात्त्विक विचारों की जानकारी लेनी पड़ी। विशेषतः प्लेटो, ऑरिस्टॉटल तथा नव प्लेटोवादी विचारों की जानकारी लेनी पड़ी। इस तरह ख्रिस्ती धर्मगुरुओं ने दर्शन के माध्यम से ग्रीक तथा ख्रिस्ती धर्मकल्पनाओं का तालमेल निर्माण किया। इस समन्वयात्मक भूमिका के फलः स्वरूप स्कोलॉस्टीक दर्शन की नींव रखी गयी।

सेंट ऑगस्टाइन, एरिजेना, सेन्ट अन्सेलम, सेंट एबेलार्ड, सेंट थॉमस ऑक्वायनस आदी विचारक मध्ययुग के प्रमुख विचारक रहे हैं। जिनके दर्शन के चिंतन का केंद्र बिंदू ईश्वर था। जिसके अनुसार सबकुछ ईश्वर से ही निर्मित है और अंततः ईश्वर में ही लय होता है।

३) आधुनिक कालखंड :

सुप्रसिद्ध दार्शनिक रेने देकार्त को पाश्चात्य दर्शन के आधुनिक युग का प्रवर्तक माना जाता है। जिसके दार्शनिक चिंतन ने दार्शनिक चिंतन को नया आयाम मिला। देकार्त बुध्दीवादी (Rationalist) विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। बुध्दीवाद के अनुसार बुध्दी यह एकमात्र तर्कशक्ती है, जिसके द्वारा सामान्य निश्चित तथा अनिवार्य ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। देकार्त के बाद लायभिज तथा स्पिनोजाने बुध्दीवाद को अधिक ऊँचाई पर ले जाने का कार्य किया।

बुध्दीवाद के विपरीत अनुभववादी विचारधारा का प्रारंभ भी इसी कालखंड में हुआ। जॉन लॉक की अनुभववादी विचारोंका प्रवर्तक माना जाता है। “अनुभववाद के अनुसार ज्ञान का स्रोत मानवी अनुभव है।” इन विचारोंको परिपूर्णता की ओर ले जाने का कार्य जॉर्ज बर्कले तथा डेवीड ह्यूम इन दार्शनिकों ने किया।

बुद्धीवाद तथा अनुभववाद में चलता आ रहा दीर्घकालीन संघर्ष समाप्त करने का श्रेय ईश्यानुएल कांट इस दार्शनिक को जाता है। जिसके दर्शन को समन्वयवाद कहा जाता है। समन्वयवाद यह बुद्धीवाद तथा अनुभववाद का समन्वय है। जिसके अनुसार ज्ञान केवल बुद्धी से अथवा केवल अनुभव से प्राप्त नहीं हो सकता। यद्यपी उसके लिए इन दोनों की आवश्यकता होती है।

इस समस्या में अंतर्निहित अन्य प्रश्न :

सृष्टि निर्माण का तत्त्व इस द्रव्य (Substance) को माना जात है। इसी द्रव्य का अध्ययन दर्शन की जिस शाखा में किया जाता है उसे अतिभौतिकीय शास्त्र (Metaphysics) कहा जाता है।

वर्तमान संदर्भ में तत्त्वमिमांसा दर्शन की ऐसी शाखा है की जो सृष्टि का प्रारंभिक तत्त्व (Original Staff) अथवा आदि कारण (First cause) का विवेचन करता है। अनुभविक जगत का अंतिम तत्त्व (Ultimate basic) क्या है? और उसका स्वरूप कैसा है? इस अंतीम तत्त्व को परमसत्ता अर्थात् पारमार्थिक सत् (Ultimate Reality) कहा जाता है। पारमार्थिक सत् वह है की, जो सृष्टीका अंतीम आधार है। जो स्वयं स्वयंका आधार है और सृष्टी की सभी वस्तुओं का पर्याप्त कारण है।

अंतिम तत्त्व अर्थात् द्रव्य के विषय में कुछ समस्याएँ निर्माण होती है। एक समस्या यह है की हमारा अनुभविक जगत् आभासी है या वास्तव है? इस द्वंद का समाधान कैसे करें? दूसरी समस्या यह है की जिसे हम द्रव्य कहते है, वह केवल गुणों का समुच्चय मात्र है या उन गुणों से अलग कुछ है?

सृष्टि का प्रारंभिक(मूल) तत्त्व क्या है? यह दर्शन का मूलभूत प्रश्न है। इसी प्रश्न से दो उपप्रश्न निर्माण होते है। इस मूलतत्त्व का स्वभाव अथवा स्वरूप (Nature) कैसा है? और इनकी संख्या कितनी है? इन प्रश्नों के भिन्न उत्तर दिये गये। जिसकी वजह से द्रव्यविषयक भिन्न भिन्न विचारधाराएँ निर्माण हुआ।

द्रव्य के स्वरूप के विषय में जो प्रश्न निर्माण हुआ उसके चार उत्तर दिये गये।

१. द्रव्य भौतिक अथवा जड़ स्वरूपी है।(भौतिकवाद)
२. द्रव्य चेतन अथवा अध्यात्मिक है। (आत्मवाद)
३. द्रव्य चेतन और जड़स्वरूपी है। (द्वैतवाद)
४. द्रव्य चेतन और जड़स्वरूपी हन दोनों से भिन्न है। (तटस्थवाद)

द्रव्य की संख्या के दृष्टीसे तीन प्रकार के उत्तर दिये गये।

१. द्रव्य एक ही है। (एकतत्त्ववाद)
२. द्रव्यों की संख्या दो है। (द्वैतवाद)
३. द्रव्यों की संख्या अनेक है। (बहुतत्त्ववाद)

द्रव्य विषयक विभिन्न मत :

द्रव्य के स्वरूप की दृष्टीसे निर्माण हुए मत निम्नलिखीत है।

१) भौतिकवाद (Materialism):

इस जड़वाद भी कहा जाता है। इस मतानुसार सृष्टि का मूल आधारभूत तत्त्व भौतिक अथवा जड़ है। इसी भौतिक तत्त्व से सृष्टि की सभी वस्तुओं का निर्माण हुआ। इसीलिए सृष्टि की सभी वस्तुओं का वास्तव स्वरूप भौतिक है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो अभौतिक है। भौतिक वस्तुओं की विशेषता यह है की वह विस्तारक्षम, दिक् काल से लिप्त तथा अचेतन होती है। भौतिकवाद के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिती तथा लय प्रकृति के नियमोंसे शेती है। जिसके लिए किसी अलौकिक सत्ता अथवा शक्ती की आवश्यकता नहीं होती। भौतिकवाद प्रकृतिवाद का समर्थन करता है। यह ईश्वर का अस्तित्व भी मानता नहीं। उसके दृष्टी से भौतिक अथवा लौकिक जगत यह एकमात्र वास्तव है।

२) आत्मवाद (Spiritualism):

इसे कल्पनावाद अथवा प्रत्ययवाद भी कहा जाता है। इस सिधांतानुसार सृष्टि का मूल आधारतत्त्व चेतन अथवा अध्यात्मिक है। सृष्टि की आधारभूत सत्ता चैतन्य, प्रत्यय, आत्मा अथवा मन है। भौतिक या जड़ द्रव्य नहीं। मूलतत्त्व अध्यात्मिक होने से संपूर्ण विश्व अध्यात्मिक, चितात्मरूप यानी अभौतिक है। यद्यपी अगर कोई वस्तु का स्वरूप भौतिक प्रतीत होता है, फिर भी वह आभासी है, वास्तव नहीं।

आत्मवाद प्रकृतिवादी है। सृष्टि की संख्या के लिए उसे प्रकृति के नियमों की आवश्यकता नहीं लगती। दिक् काल से लिप्त जगत् उसके लिए अपूर्ण, परतंत्र है। आत्मवाद के अनुसार सृष्टि के लिए आत्मतत्त्व अथवा चेतनता की आवश्यकता है। यह विचारधारा ईश्वर के अस्तित्व को मानती है। आत्मवाद तीन प्रकार का है - आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ तथा निरपेक्ष।

३) द्वैतवाद (Dualism):

इस मतानुसार सृष्टि का निर्माण एक स्वरूपी तत्त्व से नहीं बल्की द्वैती तत्त्व से हुआ है। अंतीम तत्त्व में स्वरूपालक तथा गुणात्मक द्वैत है। यह द्वैत शाश्वत है। सृष्टि की सभी वस्तुओं में दिखाई देनेवाली विविधता इसी द्वैत के कारण है।

अंतीम तत्त्व का स्वरूप और संख्या इन दोनों दृष्टिसे द्वैतवाद का समर्थन किया जा सकता है। परन्तु जो लोक संख्या की दृष्टिसे द्वैत मानते हैं वह स्वरूप की दृष्टि से भी द्वैत मानते हैं। द्वैतवाद दो प्रकार का है- दार्शनिक तथा अदार्शनिक।

४) तटस्थवाद (Neutralism):

यह विचारधारा मूलतत्त्व का स्वरूप जड़ अथवा चेतन न मानकर इन दोनों से अलग एक तटस्थ तत्त्व को स्वीकारते हैं। इसके अनुसार अंतीम तत्त्व की

व्याख्या भौतिक अथवा चेतन की दृष्टी से नहीं की जा सकती। क्यों की वह इन दोनों से परे है, तटस्थ है। लेकीन यह निर्गुणवाद नहीं। तटस्थवाद के अनुसार अनुभूत जड़ तथा चेतन दोनों समान रूप से सत्य है। उनका एक दूसरे में समावेश करना उचित नहीं। जड़ का निरूपण चेतन से तथा चेतन का निरूपण जड़ से नहीं किया जा सकता। दोनों मूलतः इन्ते भिन्न हैं की कोई भी एक दूसरे का आधार अथवा कारण नहीं नहीं बन सकते। यह भेद उपादान का नहीं बल्की संरचना का है। दोनों की उत्पत्ति ऐसी एक ही तत्व से हुआ है, दोनों की उत्पत्ति ऐसे एक ही तत्व से हुआ है, की जो उन दोनों से भिन्न तथा पूर्व है। यही परमार्थ तत्व है। लेकीन वह जड़ तथा चेतन से भिन्न होने कारण उसे तटस्थ कहा जाता है।

द्रव्य के संख्या की दृष्टी से निर्माण हुए मत निम्नलिखित है।

१) एकतत्त्ववाद (Monism):-

इसके अनुसार अंतीम तत्व की संख्या एकमात्र है। सृष्टि की आधारभूत सत्ता एक ही है। जो भी अनेकता हमे दिखाई देती है वह वास्तवता नहीं है। इंद्रियानुभव के स्तर पर हमें निःसंशय अनेकता प्रतीत होती है। लेकीन हमारे इंद्रिय विश्वासपूर्ण नहीं है। वह हमे कभी कभी गलत ज्ञान भी करवाते हैं।

२) द्वैतवाद (Dualism):-

इस मतानुसार द्रव्य के स्वरूप के साथ साथ संख्या में भी द्वैत है। इस मत का विवेचन इससे पूर्व भी आ चुका है।

३) अनेकतत्त्ववाद (Pluralism):-

इस मतानुसार अंतीम तत्व की संख्या एक अथवा दो न होकर अनेक है। सृष्टि निर्माण के पीछे अनेक तत्व है। जिनमे से हर एक तत्व स्वतंत्र है। किसी भी तत्व को किसी भी तत्व मे सम्मिलीत नहीं किया जा सकता। प्रत्येक तत्व का स्वतंत्र व्यक्तीमत्व है और वह स्वयं के अस्तित्व के लिए स्वयं उत्तरदायी है।

ख्रिस्तपूर्ण काल (ख्रि.पू. ६००) से ख्रिस्तोत्तर काल का आधुनिक दार्शनिक इम्पन्युएल कांट (ख्रि. १८ वीं शताब्दी का अंत) तक द्रव्य के संबंध में व्यापक

चिंतन हुआ है। २१ वीं शताब्दी में भी उसका चिंतन चल रहा है। लेकिन इस चिंतन में समानता कम और भिन्नता ही अधिक पायी जाती है। फिरभी आयोनियन संप्रदाय ने शुरू किया हुआ सृष्टी निर्माण का प्रश्न अपने तरीके से सुलझाने का प्रयत्न हर एक विचारधाराने किया है।

अंतिम तत्त्व अर्थात् द्रव्य विषयक चिंतन यह दर्शन का केंद्रबिंदू है। दर्शन का उद्गम तथा विकास इसी संकल्पना पर आधारित है, ऐसा कहा जा सकता है। यह चिंतन परंपरा आज भी रुकी नहीं। प्रत्येक विचारधारा का मत आंशिक रूप से स्वीकार्य हो सकता है। साथ ही प्रत्येक विचार में कुछ कमीयाँ भी रहा गयी हैं। इन सभी समानता तथा भिन्नता का समग्रता से, चिंतन हो कर एक सर्वमान्य निष्कर्ष तक जाना दर्शन का लक्ष्य है।

अध्ययन का उद्देश :

प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत हमें केवल सांख्य तथा वैशेषिक दर्शन के सृष्टिनिर्माण विषयक मतों का विचार विमर्श तथा तुलना करना है। सांख्य दर्शन का विकासवाद (उत्कांतिवाद) तथा वैशेषिक दर्शन का परमाणुवाद इन दोनों विचारों का तुलनात्मक अध्ययन कर कौनसा मत अधिक स्वीकार करने योग्य है, अथवा इन दोनों मतों का समन्वय करना संभव है क्या? यह देखना प्रमुख उद्देश है। साथ ही इन दोनों दर्शनों के मतों के तुलना आधुनिक विज्ञान के सृष्टि निर्माण के मतों से करना यह भी उद्देश्य है।

शोध पध्दती :

प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्रमुखतः विश्लेषण तथा तुलना इन शोध पध्दतियों का उपयोग करना है।

अवधारणा :

आधुनिक विज्ञान का सृष्टिनिर्माण विषयक मत सांख्य तथा वैशेषिक दर्शन के सृष्टि निर्माण विषयक मतोंका समन्वय है।

आंतरशाखीय उपयुक्ता :

सांख्य, एवं वैशेषिक दर्शन का जगत की सृष्टि संबंधी विचार प्राचीन तम माना जाता है। वर्तमान युग में निसर्ग विज्ञान में भी ऐसा विचार आज तक किया जा रहा है। परंतु इस संदर्भ में आज तक कुछ निश्चित निष्कर्ष प्राप्त नहीं है। इसलिए दार्शनिक विचारोंका विज्ञान में स्वीकार अथवा वैज्ञानिक अध्ययन के निष्कर्ष स्वरूप कुछ अन्य समन्वयात्मक निष्कर्ष निकालना संभव हो सकता है।

संदर्भ :

१. All comes from water and to water all returns
२. कि कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्वं च संप्रतिष्ठाः ।-
श्वेताश्वेतरोपनिषद् १-१
३. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्य संविशन्ति
तद् ब्रह्मेति ।- तै ३-१
४. आप एवेद मग्र आसस्ता आपः सत्यम् सृजन्त - बृ ५-५-१
५. The begining of that which is, is the coundless, whence
that which is rises; thither must it
returns again of for their juyustice as it is appointed
according to the ordering time.
६. Just as our souls, which are made of air, hold us
together, so do breath and air encompass
the world - Eeusly Greck philosophy - Bem
७. छांदोग्य उपनिषद् - ४.३.१-२
८. कास्मिन् खुल भगवो विज्ञाते सर्वमिंद विज्ञातं भवती । मुण्डक - १.१.३
९. तैत्तिरेय उपनिषद् - २.१
१०. तत्रैव
११. छांदोग्य - ६.२.४

भारतीय दर्शनों में सृष्टि निर्माण का चिंतन

भारतीय दर्शन का मूल वेदों को माना जाता है। इसलिए एक प्रकार से वे भारतीय दर्शन के मूल उद्गम ही है। अनेक दर्शनों के मूलतत्त्व बीज रूप से वेदों से मिलते हैं। वस्तुतः दैनिक परंपरा दो पक्षों में विभाजित की जाती है- कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड को आरण्यक और उपनिषदोंने विकसीत किया है। आगे चलकर इसी ज्ञान को उपनिषदोंने अधिक विकासित किया। इसी विकसित ज्ञान को कालांतर से विभिन्न भारतीय दर्शनों में पाया जाता है। दर्शन का इतिहास दो भिन्न विचारधाराओं में विभाजित पाया जाता है। एक धारा वह है जो ग्रीस में शुरु हुआ और आधुनिक पश्चिमी राष्ट्रों में फैल गयी। दूसरी धारा वह है जो वेदों और उपनिषदों में शुरु होकर आज पूरे भारत वर्ष में फैल गयी है। पश्चिमी दार्शनिक परंपरा का स्रोत एजियर सागर किनारे बसे एजियन आयलंड नामक द्विपसमूह में पाया जाता है। उसका दृष्टिकोन उस बौद्धिक अनूभूति पर आधारित है, जो गणितीय ज्ञान को आदर्श मानता है। गणितीय ज्ञान इसलिए आदर्श माना जाता है की उसके निष्कर्ष असंदिग्ध तथा सार्वभौम होते हैं। इसके साथ ही वे विशुद्ध बुद्धी से ग्राह्य हैं और वह इंद्रियगोचर जगत् के लिए अनिवार्य होते हैं। इन चारों विशेषताओं ने पश्चिमी जगत के दार्शनिक विचारों को प्रभावित किया है।

भारतीय परंपरा में गणित को आज भी कोई विशेषस्थान प्राप्त नहीं है। परंतु बुद्धिद्वारा ग्रहण किया जानेवाला तथा इंद्रियोंद्वारा प्राप्त किया जानेवाला इन

दोनों भारतीय दार्शनिक अंतर मानते हैं। दुसरी बात यह है कि, ग्रीस में दर्शन को मनुष्य के सामाजिक तथा राजकीय स्थिती से जोड़ा गया। समाज अथवा राज्य से अलग मनुष्य उनकी दृष्टीसे या तो पशु था अथवा ईश्वर था। इसलिए मनुष्य अपना आदर्श समाज में अथवा आदर्श राज्य में व्यतीत कर सकता है, ऐसी उनकी धारणा थी।

पश्चिमात्य दर्शन के इतिहास में बुधीने जब-जब सत्-असत् के बारे में प्रश्न उपस्थित किया तब उसे इस स्वरूप में लिए गया की जो परिवर्तनशील है वह वास्तव में असत् है अथवा उसे सत् नहीं माना जा सकता इस मत का अपवाद हेरॉकिलट्स का परिवर्तन ही सत्य है, यह सिद्धांत है। लेकिन परिवर्तनशीलता वास्तव में बुधीसे अग्राह्य है, बुधी की कसौटी पर वह उतर नहीं सकती, इस मत को मान्यता प्राप्त हुई। कुछ इस प्रकार की स्थिती भारतीय दर्शन में भी थी। भारतीय परंपरा में बौद्ध दर्शन ने स्थिर पदार्थ का खंडन कर परिवर्तन को सत्य माननेवाला क्षण भंगवाद प्रतिपादित किया, यह उल्लेखनीय है।

दर्शन का एक पक्ष ऐसा है, जो जगत् को समग्रता से जानने का प्रयास करता है। उसके अनुसार जगत् में जो विविधता प्रतीत होती है, उसे मैं कुछ आपसी संबंध है क्या? यह विविधत किसी एक ही वस्तु के विभिन्न रूप तो नहीं? क्या वास्तव में ही उनमें ऐसी मूलभूत भिन्नता है, जिसे किसी एक के अनुरूप नहीं समझा जा सकता?

जगत् के आरंभ से ही मानव दार्शनिक चिंतन करते आया है। अध्यात्मिक विचार उसके मन में आरंभ से ही आते हैं। सृष्टि के विभिन्न पदार्थ देखकर वे सब कैसे और कहाँ से उत्पन्न हुए? उसका उपादान क्या है? उसके पिछे क्या कोई

शक्ती है? ऐसे प्रश्न उसके मन में निर्माण हुए। अपने खुद की सोच के अनुसार उन प्रश्नों का हल ढूँढने का प्रयास भी उसने किया। इन आरंभिक विचारों से दर्शन का उगम हुआ।

२. भारत में Philosophy को दर्शन कहा जाता है। दर्शन शब्द दृश धातू से बना है जिसका अर्थ जिसके द्वारा देखा जाय। भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार हो सके। भारतीय दार्शनिक केवल तत्त्व की बौध्दीक व्याख्या से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि वह तत्त्व की अनुभूती प्राप्त करना चाहता है।

भारतीय दर्शन में अनुभूतियाँ दो प्रकार की मानी गयी हैं। ऐन्द्रिय और अनैन्द्रिय। इन दोनों अनुभूतियों में अनैन्द्रिय अनुभूति जिसे अध्यात्मिक अनुभूती कहा जाता है, महत्वपूर्ण है। भारतीय विचारकों के मतानुसाद तत्त्व का साक्षात्मकार अध्यात्मिक अनुभूती से ही सम्भव है। अध्यात्मिक अनुभूती बौद्धिक ज्ञान से उच्च है। बौद्धिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय के बीच द्वैत बर्तमान रहता है, परंतु अध्यात्मिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नष्ट हो जाता है। चूँकी भारतीय दर्शन तत्त्व के साक्षात्कार में आस्था रखता है इसलिए इसे तत्त्व दर्शन कहा जाता है।

भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता व्यावहारिकता है। भारत में जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए दर्शन का सृजन हुआ है। जब मानव ने अपने को दुःख के आवरण से घिरा हुआ पाया तब उसने पीड़ा और क्लेश से छुटकारा पाने की कामना की। इस प्रकार दुःखों से निवृत्ति के लिए उसने दर्शन को अपनाया। भारत में ज्ञान की चर्चा ज्ञान के लिए न होकर मोक्षानुभूती के लिए हुई है। अतः भारत में दर्शन का अनुशीलन मोक्ष के लिए ही किया गया है।

भारतीय दर्शन का दृष्टिकोन धार्मिक है। इसका कारण यह है की भारतीय दर्शन पर धर्म की अमिट छाप है। दर्शन और धर्म दोनों का उद्देश व्यावहारिक है। दर्शन और धर्म का सामान्य लक्ष्य मोक्षानुभूति है। धर्म से प्रभावित होने के फलस्वरूप भारतीय दर्शन ने आत्मसंयम पर जोर दिया गया है। सत्य के दर्शन के लिए धर्म सम्मत आचरण अपेक्षित माना गया है।

भारतीय दर्शन अध्यात्मवादी है। भारतीय दर्शन में अध्यात्मिक ज्ञान को प्रधानता दी गयी है। यहाँ का दार्शनिक सत्य के सैद्धान्तिक विवेचन से सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि वह सत्य की अनुभूति पर जोर देता है। अध्यात्मिक ज्ञान तार्किक ज्ञान से उच्च है। तार्किक ज्ञानमें ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत विद्यमान रहता है जब कि आध्यात्मिक ज्ञान में वह द्वैत मिट जाता है।

भारतीय दर्शन का चिन्तन संश्लेषणात्मक दृष्टिकोन पर अधारित है। इस के सभी दर्शनों में सभी समस्याओं पर एक ही साथ विचार किया गया है।

भारतीय दर्शन इह-लोक के साथ साथ पर-लोक की सत्ता में विश्वास रखता है। पश्चिम दर्शन के अनुसार इस संसार के अतिरिक्त कोई दूसरा संसार नहीं है। इसके विपरित भारतीय विचारधारा में स्वर्ग और नरक की भी मीमांसा हुई, जिसे चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी दर्शनों में मान्यता मिली है।

भारतीय दर्शन दो वर्गों में बाँटा जाता है। आस्तिक तथा नास्तिक दर्शन। साधारणतः आस्तिक याने ईश्वर को माननेवाला तथा नास्तिक याने ईश्वर को न मानने वाला ऐसा माना जाता है। लेकीन संस्कृत वाडमय में आस्तिक का अर्थ वेदों को माननेवाला तथा नास्तिक का अर्थ वेदों को न मानने वाला ऐसा पाया जाता है।

आस्तिक वर्ग की शाखा में वेदांत, मीमांसा, सांख्य योग, न्याय तथा वैशेषिक इन दर्शनों की गणना होती है। नास्तिक वर्ग की शाखा में चार्वाक, बौद्ध

तथा जैन इन दर्शनों की गणना होती है। अन्य दर्शनों में श्रौत, वैष्णव, शैव, पाशुपत आदि मी प्रमुख प्रचलित दर्शन हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम भारतीय दर्शन तथा विचाराधाराओं में प्रतिपादित सृष्टी निर्माण के चिंतन का विवेचन करेंगे।

१) वेद एवं उपनिषद :-

सृष्टी का निर्माण तथा उसमे होनेवाले परिवर्तनों का रहस्य आज भी गहरा है। आर्य दार्शनिकों का उद्देश न केवल अध्यात्म की जिज्ञासा थी उन्होंने अपने चिंतन में दृश्यमान जगत् की भी व्याख्या की थी।

ऋग्वेद के दसवें मजुल के विश्वकर्मन् सूक्त(१०/८१) ये सृष्टी के रचयाता को ही होता, ऋषि और पिता कहा गया है। उसने किस पदार्थ से इस दृश्यमान जगत को बनाया। यह प्रश्न तब भी पहली था और आज भी पहली है। इस सृष्टी का अधिष्ठान क्या है? इसका आरम्भ कैसे हुआ? किस पदार्थ से यह परिवर्तनशील जगत बना? वह कौन सा वन था और वह कौन सा वृक्ष था जिसके द्रव्य से आकाश से लेकर पृथ्वी तक के लोक-लोकान्तर बने। ऋग्वेद के इन मंत्रों की आवृत्ति यजुर्वेद व तैतिरीय संहिता में भी पायी जाती है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (१०/१२९) मे अथाह जल की ओर संकेत है, जो सृष्टी के आरम्भ मे था। ऋग्वेद के अधर्मर्षा सूक्त में (१०/१९०) तप से ऋत ओर सत्य की उत्पत्ति बतलाई है। फिर अंधःकार की ओर इसके बाद जल से युक्त समुद्र की।

स्वधा शब्द का प्रयोग ऋक और अर्थव में हुआ है तो संभवतः वह इस सृष्टी के उपादान कारण का वाचक है।^१ असंभूति और विनाश ये दो शब्द भी प्रकृति या आदिद्रव्य के लिए यजुर्वेद में आये हैं।^२ केन उपनिषद में अग्नि और वायु को भौतिक देवता माना गया है। अग्नि वह सत्ता है जो सबको जलादे और वायु वह है जो सबको उड़ा दे। पृथ्वी से साधारण धरती अभिप्रेत है।^३ पिप्लाद ऋषी ने प्रश्नोपनिषद में सृष्टी का आरंभ प्राण से बतलाया है।^४ प्रश्नोपनिषद में पहली बार आकाश, वायु, अग्नी, आप और पृथ्वी इन पाँचों को इस क्रम से पाते।

इससे पूर्व इनका उल्लेख तो आता है लेकीन एक तो अलग अर्थ से अथवा कम संख्या मे आता है। आगे चलकर इन पाँचो के साथ साथ उनमे से प्रत्येक की मात्रा का भी उल्लेख आता है।^६ ये मात्राएँ इन तत्त्वो की कारण रूप मानी जाती है।

सृष्टि विकास की एक झाँकी मुँडकोपनिषद में भी पायी जाती है। ब्रह्म ने तप किया फिर अन्न उत्पन्न किया और अन्न से प्राण, मन, सत्य, लोक, कर्म और अमृत विकसित हुए।^७ यहाँ पर अन्न शब्द का अभिप्राय नामरूपात्मक सृष्टि है, जिसका पुरुष भोग करता है। मुणुकोपनिषद में प्रकृति से बने संसार की तुलना महावृक्ष से की है। इस महावृक्षपर दो पक्षी एक ही आयु के सरलभाव से बैठे हैं। एक पक्षी फलों का भोग करता है और दूसरा साक्षीरूप है।

तैत्तिरीय उपनिषद में विकास का एक क्रम दिया गया है इस विश्व आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायू, वायू से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से रेतस(वीर्य) और रेतस से पुरुष बना। इसलिए पुरुष को अन्नरसमय कहा गया है।^८ तैत्तिरीय उपनिषद मे कहा गया है कि, पहले असत् था और उससे सत् की उत्पत्ति हुआ। ब्रह्म ने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊँ। उसने तप किया। तप से तपकर उसने इस व्यक्त जगत की सृष्टि की।

ऐतरेय उपनिषद के अनुसार व्यक्त सृष्टि के पूर्व केवल आत्मा थ और कुछ भी व्यक्त न था। आत्मा ने ईक्षण किया कि लोकों को रचूँ। उसने अभ्यंस, मरीचि, मर और आप ये लोक बनाए।^९

छांदोग्य उपनिषद में एक जगह पर व्यक्त जगत का विकास इस प्रकार दिया गया है- आदित्य ही ब्रह्म है। सृष्टि से पूर्व केवल असत् था, उसी से सत् की उत्पत्ति हुई ओर वह सम हो गया। वह फिर अण्डाकार हो गया। इसके बाद वह मध्य से टूटकर दो भागों मे बट गया। ये दोनों अण्ड-कपाल, चांदी और सोना बन गये। जो चांदी का कपाल था वह पृथ्वी हुआ और जो सोने का कपाल था वह घौ

बना। इस में से जो जरायु निकली वह पर्वत बनी और जो गर्भ भाग था वह मेघ और निहार बना। जो धमनियाँ थीं वह समुद्र बना।^{१०} यह उपनिषद कहता है की अंत में जाकर सब पदार्थ वायु में लीन हो जाते हैं। अग्नी, सूर्य, चंद्रमा सब बुझकर वायु में लीन हो जाते हैं। अग्नी, सूर्य, चंद्रमा सब बुझकर वायु में लीन हो जाते हैं। पानी भी सूखकर वायु में लय होता है।^{११}

बृहदारव्यको पनिषद के अनुसार, व्यक्त सृष्टि के पूर्व कुछ भी नहीं था। अशनायारूप मृत्यू (भक्षणकर्ता) से यह सब ढका हुआ था। अशनायारूप मृत्यू ने मन की रचना की। इससे जल उत्पन्न हुआ। इस जल के उपर जो शर मलाई थी, वह जमकर पृथ्वी बनी। ब्रह्म ने जो भ्रम किया उससे तपकर तेज या अग्निपिण्ड उत्पन्न हुआ।^{१२} ब्रह्म के दो रूप हैं- मूर्त और अमूर्त। एक स्थिर है, दूसरा परिवर्तनशिल है। एकमर्त्य है दूसरा अमर्त्य है। वायु और आकाश अमूर्तरूप हैं, और शेष सब मूर्तरूप हैं।

श्वेताश्वर उपनिष्ठद में सृष्टि के उपादान कारण प्रकृति के रूप की प्रथम बार झलक मिलती है। इस प्रकृति से नील, हरित, लाल रंग के पदार्थ, पंतग, (लोक), बादल, ऋतू और समुद्र उत्पन्न हुए। यह प्रकृति अजा है, अर्थात् इसको किसीने उत्पन्न नहीं किया। वह अनादि अनन्त है। फिर भी वह एक है। उसके तीन गुण हैं- सत्त्व, रजस, तमस, और इसीसे बहुरूपवाली प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। यह स्वयं अजा लेकीन प्रजाओं को बनाती है। इस के अतिरिक्त दो अज और हैं- एक तो वह, जो इसका भोग करके इसमें कसता है(जीव) और दूसरा अज जो इसमें रहते हुए भी इससे पृथक था अलिप्त रहता है (ब्रह्म)। दो अज और एक अजा तीनों शाश्वत, स्वयंभू, अनादि और अनन्त का त्रेतवाद इस उपनिषद में अस्संदिग्ध रूपेण स्पष्ट है।

२) सांख्य-योग दर्शन :-

सांख्य की सृष्टि रचना के उपनिषदों की सृष्टि का व्यवस्थित रूप कहना अधिक उपयुक्त होगा। उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है- सत्त्व, रजस और तमस की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। उस प्रकृति से महत(बुध्दी तत्त्व), महत् से अहंकार, अहंकार से पाँचे तन्मात्राए तथा पांच ज्ञानेद्रिय, पाँच कर्मेद्रिय और मन बने, पंच तन्मात्राओंसे पंच महाभूत उत्पन्न हुए। ये सब और पुरुष मिलकर सृष्टि रचना के जड जगत् के २५ तत्त्व माने है।^{१३}

सृष्टि का क्रम प्रकृति और पुरुष के संयोग से आरंभ होता है। यह सिद्धांत विकासवाद अथवा उत्क्रांतीवाद कहलाता है। अर्थात् संसार विकास का फल है ईश्वर फल है ईश्वर की कृति नहीं। जब प्रकृति की साम्यावस्था भंग हो जाती है, सर्वप्रथम रजोगुण प्रवृत्त होता है। प्रत्येक गुण की प्रधानता से नये पदार्थों का अविर्भाव होता है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से कुल २३ पदार्थों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सांख्य सृष्टि का ही पूरक है। यह दर्शन सांख्या के २५ तत्त्वों के अलावा २६वा तत्त्व ईश्वर को मानता है। सांख्या का अनुकरण करने के कारण योगदर्शन को सेश्वर सांख्या भी कहा गया है।

३)न्याय वैशेषिक दर्शन :

न्याय वैशेषिक की दृष्टि में भौतिक सर्ग की रचना का मूल परमाणु है। कोई भी अवयवी संयोगोंसे निर्मित होता है। संयोग का कारण कर्म होता है। संसार गतीमान है और परीवर्तनशील है। उसकी सभी वस्तुओं में परिवर्तन होना चाहिए। यह परिवर्तन कर्म गती से उत्पन्न होता है।

न्याय वैशेषिक के अनुसार किसी वस्तु में यह कर्म बाहर से आता है। किसी वस्तु के विनाश में वह मानव प्रयत्न द्वारा तथा संसार के विनाश में दिव्य प्रयत्न से आता है। इस प्रकार के कर्म की सहायता से परमाणु बड़े बड़े अवयव बनाने के लिए एकत्र होते हैं और धीरे धीरे इस सृष्टि का उद्भव होता है।

आधुनिक विज्ञान जगत की रचना के पिछे परमाणु को ही मूल कारण मानता है। अब तक के निष्कर्षों के अनुसार परमाणु में भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्युट्रॉन की लीला दर्शाता है। जो क्रमशः उत्पादक, चालक संहारक के प्रतिक है। ठीक वैसे ही न्याय वैशेषिक भी परमाणु को भी क्रियाशील करने में दिव्य शक्ति दिव्य प्रयत्न की ओर संकेत करता है।

महर्षी गौतम ने न्याय दर्शन में जगत की उत्पत्ति के विषय में परमाणु के चिन्तन पर बल दिया है। अतः इनके इस चिन्तन का नाम परमाणुवाद के नाम से जाना जाता है। वैशेषिक के आचार्य कणाद का नाम परमाणुवाद के सम्बन्ध में चिरऐतिहासिक है। जो समानता सांख्य-योग में है उतनी ही न्याय वैशेषिक में है। न्याय और वैशेषिक में अपनी निजीमौलिकताएँ भी है, परन्तु वे एक दूसरे के पूरक है।

४) मीमांसा-वेदान्त दर्शन :

मीमांसा दर्शन जगतोत्पत्ति के मूलकारण का तथा प्रलय सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता। केवल व्यक्ति उत्पन्न होते रहते हैं तथा विनाश को प्राप्त करते रहते हैं। जगत् की सृष्टि एवं विनाश कभी नहीं होता। कुछ मीमांसक अणुवाद की सत्ता स्वीकारते हैं। इनके मत में जगत के सभी पदार्थ अणु से उत्पन्न हुए हैं। कर्मों के फलोन्मुख होने से अणु संयोग से व्यक्ति उत्पन्न होते हैं तथा फल की समाप्ति हो जाने पर व्यक्ति का विनाश हो जाता है। इनकी दृष्टी में हमारे नेत्रों को गोचर होने वाला कण ही परमाणु है। इनसे भी सूक्ष्म कण की परिकल्पना का कोई आधार नहीं है।

मीमांसा दर्शन कार्य कारण के सम्बन्ध की व्याख्या में कारण की सहायता के लिए शक्ति नामक विशिष्ट पदार्थ की सत्ता को मानते हैं। जगत में तीन प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान हमें होता है। शरीर, इंद्रिय और पदार्थ इन वस्तुओं से युक्त यह संसार अनादि अनंत है। पदार्थों की संख्यापर इनके आचार्यों में मतभेद है।

प्रभाकर ८ पदार्थ, कुमारिल ५ पदार्थ। जब की मुरारी मिश्र की पदार्थ कल्पना इन दोनों से भिन्न है। उनके शब्दों में ब्रह्मा ही एक परमार्थभूत पदार्थ है। किन्तु लौकिक व्यवहार की उत्पत्ति के लिए अन्य पदार्थ है। इस प्रकार मीमांसा ने जगत विषयक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

वेदान्त दर्शन की दृष्टि में सृष्टि का उपादान कारण ईश्वर है। मुण्डकोपनिषद में वर्णित मकड़ीवाले दृष्टान्त का आधार लेकर चेतन से जड जगत की उत्पत्ति का सिध्दान्त प्रतिपादित किया गया। जैसे मकड़ी बिना किसी उपकरण के अपने शरीर से अभिन्न तन्तुओं को रखती है और पुनः उसको स्वयं में समेट लेती है, वैसे ही यह विश्व उप परमात्मा से ही उद्भूत है। जोकि इसका उपादान व निमित्त कारण भी है। ईश्वर जादुगर की तरह अपनी माया शक्ती से विचित्र सृष्टि करने में समर्थ है। ज्ञानियों के लिए इस जगत की सत्ता निर्मूल है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या सिध्दांत का वास्तविक अर्थ है सत्याभाव या सत्य से भिन्न। सतत परिवर्तनशील होने के कारण जगत सत्य की कोटी में नहीं आता। अतः आचार्य शंकर ने जगत को मिथ्या कहा तथा ब्रह्म को सत्य माना है। निर्विशेष ब्रह्म से सविशेष जगत की उत्पत्ति के लिए वेदान्त ने ब्रह्मा की माया शक्ती की कल्पना की है। माया की भी आवरण व विक्षेप नामक दो शक्तियाँ मानी हैं। यह ठीक उसी तरह है, जैसे की सांख्या की प्रकृति (सत्त्व, रजस, तमस, युक्त) एवं आज के विज्ञान के परमाणुओं में विद्यमान इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन इत्यादि।

५) चार्वाक दर्शन :

चार्वाकों की तत्त्वमीमांसा के अनुसार पृथ्वी जल, तेज तथा वायु ये ही चार तत्त्व हैं। बौद्धों की भाँती चार्वाक भी यह मानते हैं कि आवरणाभावा होने से आकाश शून्य ही है, कोई सत्तात्मक पदार्थ नहीं। ये ही चारों पदार्थ अपनी आणविक अवस्था में जगत के मूल कारण हैं। बाह्य जगत, इंद्रिया तथा भौतिक

शरीर सब इन्हीं चार मूलतत्त्वों से उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी आदि चार भूतों के मिश्रण से शरीर की सृष्टि होती है। शरीर के अतिरिक्त आत्मा नामक अन्य कोई द्रव्य है ही नहीं। चेतन आत्मा का धर्म है। परन्तु चैतन्य का संबंध शरीर से होने के कारण शरीर को ही आत्मा मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है। भूत की एक विशेष परिमाण में समष्टि होने पर चैतन्य की उत्पत्ति स्वयं हो जाती है। सृष्टि का निर्माण स्वाभाविक घटना है। जिसके लिए किसी ईश्वर या निमित्तकारण की आवश्यकता नहीं। मीठा लगना गन्ने का स्वभाव है, नाचना मोर का स्वभाव है, उष्ण लगना अग्नी का स्वभाव है उसी तरह सृजन सृष्टि का स्वभाव है। चारों तत्त्वों मिश्रित होना स्वभाव है। उसी मिश्रण से स्वाभाविक रूप से सृष्टि का निर्माण होता है।

६) बौद्ध दर्शन :

बौद्ध दर्शन के सृष्टि निर्माण के चिंतन के बारे में वास्तविक बात यह है कि, जो प्रो.ताकाकुसू ने बौद्ध दर्शन के कारणवाद का विवेचन करते तिखी है। “बौद्ध दर्शन में आदिकारण या मूलकारण जैसी बातों को महत्ता ही नहीं दी गयी और न संसार की उत्पत्ति आदि बातोंपर कोई विचार किया गया है। बौद्ध दर्शन में धर्म को दार्शनिक सिध्दांतों का व्यावहारिक प्रयोग समझा गया है। उसमें ईश्वर, सृष्टि अन्तिम निर्णय जैसी बातों की ओर कोई निर्देश नहीं किया गया है। जहां तक सृजन की समस्या का प्रश्न है, तो बौद्ध दर्शन किसी भी विज्ञानद्वारा प्रमाणित व प्रतिपादित सिध्दांत को मानने के लिए तैयार है। वह धर्म व विज्ञान में कोई संघर्ष स्वीकार नहीं करता। बौद्ध दर्शन के अनुसार सब प्राणी और सब वस्तुएँ स्वतः उत्पन्न या स्वोत्पत्ती करता है।”^{१४}

गौतम बुद्ध के चिंतन का विषय केवल नैतिक आचार था। उन्होंने दर्शन की व्यर्थता प्रमाणित करने का प्रयास किया। लेकिन बुद्ध के बात बौद्ध विचारकोंने दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश किया। इसके फलःस्वरूप बौद्ध धर्म में तीस से ज्यादा शाखाएँ विकसीत हुआईं। इनमें से चार शाखाओं को भारतीय दर्शन में

महत्वपूर्ण स्थान है। माध्यमिक, योगाचार, सौत्रांतिक और वैभाषिक। इन शाखाओं ने “किस प्रकार की सत्ता का अस्तित्व है?” इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास किया है।

पहला उत्तर यह है की किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं, सभी शूल्य है। इस मत में मानसिक तथा बाह्य विषयों का निषेद किया है। (शून्यवाद-माध्यमिक)

दूसरा उत्तर यह है की विज्ञान ही एकमात्र सत्य है। विज्ञान के अलावा सभी विषय असद् है। भौतिक विश्व का कोई अस्तित्व नहीं।(विज्ञानवाद-योगाचार)

तीसरा उत्तर यह है की मानसिक तथा विषयगत दोनों प्रकार की वस्तुएँ सत्य है। (वस्तुवाद-सर्वास्तिवादी)

७) जैन दर्शन :-

जैन दर्शनकारों के अनुसार द्रव्य वह है, जो गुण और पर्याय का आश्रय है।^{१५} वस्तु का सहभावी धर्म गुण है। उसका संबंध द्रव्यत्व के साथ है। वह उस द्रव्य के साथ था और साथ रहेगा। वस्तु का जो क्षणिक परिवर्तन स्वभाव है वह पर्याय है।

दृश्यमान सृष्टि के उपादान परमाणु है। उन परमाणुओं के योगिक परिणाम से ही समरत्त पदार्थ समुह में बनना और बिगड़ना प्रतिक्षण गतिमान है। लेकीन उनका परमाणुत्व धर्म सदा सुरक्षित है। एक भी परमाणु न तो कभी नया बनता है और न किसी परमाणु का विनाश होता है। वे रस परिवर्तनशील विश्व के शाश्वत सदस्य हैं। जैसे-लकड़ी जल गयी, उससे कुछ कोयला बना, कुछ राख तथा कुछ धुंआ। परमाणु ज्यों के त्यों रहे। अन्तर केवल पर्यायों का पड़ा। पहले वे काष्ठ रूप में थे, अब वे नाना, द्रव्यों के रूप में। पदार्थ का स्थूल परिवर्तन कदाचित होता है, लेकीन सूक्ष्म परिवर्तन हर समय होता रहता है।

जैन दर्शन सृष्टी का मूलतत्त्व पुद्गल(एक परमाणु) को स्वीकारता है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान भेद, अंधःकार, छाया, प्रकाश, चमक, गर्मी

आदि पुद्गल के ही पर्याय है।^{१६} जैन दर्शन के अनुसार इने परमाणुओं में स्वाभाविक स्निग्धता व रुक्षता होने के कारण परस्पर बंध होता है जिनसे स्कन्धों की उत्पत्ती होती है। दो परमाणुओं से द्वयणुक, तीन परमाणुओंसे त्रयणुक, चार से चतुरणुक, पाँच से पंचाणुक आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं। विश्व का समस्त वातावरण गतीशील पुद्गल परमाणुओं और स्कन्धों से बना है। उसी में परस्पर संयोग आदि निमित्तों से गर्मा-सर्दी, प्रकाश, छाया आदि पदार्थ उत्पन्न व नष्ट होते हैं। इन सब का आधार है पुद्गल द्रव्य।

८) अन्य विचारधाराएँ :

उपर्युक्त दार्शनिक विचारधाराओं के अतिरिक्त श्रौत दर्शन, उपानिषद् दर्शन, गीता दर्शन, वैष्णव दर्शन, माहेश्वर दर्शन, शैव दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन जैसी अनेक विचारधाराएँ भी भारतीय दर्शन में प्रचलित हैं। इन सभी ने अपने ढँग से सृष्टि निर्माण विषयक मतों का प्रतिपादन किया है।

दुनिया की समस्त विचारधारा किसी न किसी आधार पर खड़ी है। भारतीय दर्शन की सृष्टि विषयक अवधारणा पर चिन्तन करने पर इस का मूल हमें वेद-उपनिषदों में सर्वप्रथम दृष्टिगोचर होता है। वेद तो समस्त विद्याओं का मूल है। वेद संसार के मूल में एक व्यापक शक्ति की सत्ता को स्वीकारते हैं। जैसे-एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ।

भारतीय दर्शन के चिन्तन का क्षेत्र वैसे देखा जाय तो अतिव्यापक है। भौतिक जगत के सभी विषयोंपर दर्शन ने चिन्तन प्रस्तुत किया है। भारतीय दर्शन को अध्यात्मवादी दर्शन न हो कर व्यापक चिन्तवाला दर्शन है। जगत का कोई भी विषय इससे अछुता नहीं है। पुनरपि इसके चिन्तन का आधार अध्यात्मपरक अवश्य है।

संदर्भ :

१. ऋग्वेद १०/१९०/१
२. ऋग्वेद १०/१५/१
३. अथर्ववेद ४/१/३
४. केनोपनिषद् ३/५/९
५. प्रश्नोपनिषद् १/४/५
६. प्रश्नोपनिषद् ४/८
७. मुण्डकोपनिषद् १/१/८
८. तैत्तिरीयोपनिषद् १/३
९. ऐतरेयोपनिषद् १/१/३-४
१०. छांदोग्योपनिषद् ३/१९/१-२
११. छांदोग्योपनिषद् ३/३/१-२
१२. बृहदारण्यकोपनिषद् १/२/१-२
१३. स्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतो अहंकारो अंकारात्
तन्मात्रान्युभयभीद्रियं च पंचतन्मात्रेऽध्यः
स्थूल भूतानि पुरुष इति पंचविशंतीगण (सांख्यकारिका ११६७)
१४. The essentials of buddhist philosophy- Prof. Takakusi-63
१५. तत्त्वार्थाधिगम् सूत्र एवं उत्तराध्ययनसूत्र - २८-६
१६. तत्त्वार्थाधिगम् सूत्र - ५-२४

सांख्य दर्शन में इस समस्या का चिंतन (सांख्य दर्शन का सृष्टी सिध्दान्त (विकासवाद))

सांख्य दर्शन को भारत का अत्यधिक प्राचीन दर्शन कहा जाता है। इसकी प्राचीनता के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। सांख्य विचारोंका उल्लेक श्वेताश्वतर कठ आदि उपनिषदों में भी देखने को मिलता है। क्योंकि उपरोक्त उपनिषदों में सांख्य के मौलिक प्रत्यय, जैसे-त्रिगुण, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, तन्मात्रा इत्यादि की चर्चा हुई है। इसके अतिरिक्त भगवद्गिता में भी प्रकृति और पुरुष के भेद का विस्तृत उल्लेख है। उपरोक्त कृतियों में सांख्य दर्शन का उल्लेख उसकी प्राचीनता का सबल प्रमाण है। इसके साथ ही इस दर्शन के मौलिक सिध्दांतों की समीक्षा न्यायसूत्र और ब्रह्म में अन्तर्भूत है। इससे यह सिध्द होता है कि न्यायसूत्र और ब्रह्मसूत्र के निर्माण के पूर्व सांख्य दर्शन का पूर्ण विकास हो चुका था।

सांख्य दर्शन प्राचीन होने के साथ साथ एक मुख्य दर्शन भी है। भारत वर्ष में जितने दार्शनिक संप्रदायों का विकास हुआ उनमें वेदान्त सबसे प्रधान है। परंतु वेदान्त के अलावा यदि कोई महत्वपूर्ण दर्शन है तो वह सांख्य है। यदि वेदान्त को प्रधान दर्शन कहे तो सांख्य को उपप्रधान दर्शन कहा जा सकता है।

सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल माने जाते हैं। परंतु इनके संदर्भ में प्रामाणिक ढंग से कुछ कहना कठीन प्रतीत होता है। कुछ लोग कपिल को ब्रह्मा का पुत्र, कुछ लोगों ने विष्णु का अवतार तथा कुछ लोगों ने अग्नि का अवतार माना है। अगर इन विचारोंको किंवदंतियाँ कहकर टाला भी जाय, फिर भी यह मानना पड़ता है की, कपिल एक ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति थे जिन्होंने सांख्य दर्शन की रचना की। भगवान् कृष्ण ने भी भगवद्गिता में कपिल को अपनी विभूतियों में गिना है। सिध्दानां कपिलों मुनि अर्थात् मै सिध्दों में कपिल मुनी हूँ।

सांख्य दर्शन द्वैतवाद का समर्थक है। उन्हों ने चरम सत्ताएँ दो प्रकार की मानी-प्रकृति और पुरुष। पुरुष और प्रकृति एक दूसरे के प्रतिकूल है। द्वैतवादी दर्शन होने के कारण सांख्य न्याय के अनेकवाद का सिर्फ विरोध ही नहीं करता बल्की न्याय के ईश्वरवाद तथा सृष्टीवाद का भी खंडन करता है। सृष्टीवाद का विरोध करनेवाला सांख्य एकमात्र दर्शन है। सृष्टीवाद का विरोध कर सांख्य विकासवाद का समर्थन करता है। भारतीय दर्शन में विकासवाद का एकमात्र उदाहरण सांख्य ही है।

सांख्य का सारा दर्शन उसके कार्यकारण सिध्दांत पर अधारित है। इसलिए सांख्य के कार्य कारण सिध्दांत का संक्षिप्त विवरण देखना अनिवार्य है।

कारणता सिध्दांत :

सांख्य के कार्य-कारण सिध्दांत को सत्कार्यवाद के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक कार्यकारण सिध्दांत के बारे में एक प्रश्न उठता है की, कार्य की सत्ता उत्पत्ति के पूर्व उपादान कारण में विद्यमान होती है? न्याय दर्शन ने इस प्रश्न का उत्तर अभावात्मक रीतिसे दिया। उनके अनुसार कार्य की सत्ता उत्पत्तिपूर्व उपादान कारण में विद्यमान नहीं होती। निर्माण के पूर्व कार्य की सत्ता असत् होती है। कार्य का नविनता से आरंभ होता है। इस मत को आरंभवाद अथवा असत्कार्यवाद कहा जाता है।

सांख्य का सत्कार्यवाद अथवा परिणामवाद इस प्रश्न का भावात्मक उत्तर देता है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य उत्पत्ति के पूर्व उपादान कारण में अव्यक्त रूप से विद्यमान होता है। निर्माण के पूर्व कार्य कारण में ही होता है, सत् होता है। कारण ही परिनत हो कर कार्य के रूप में आगे आता है।

सांख्य सत्कार्यवाद को सिध्द करने के लिए निम्नलिखित युक्तियों का प्रयोग करता है।

१. यदि कार्य की सत्ता को कारण में असत् माना जाय तो फिर कारण से कार्य का निर्माण किसी भी कीमत पर नहीं हो सकता। जो असत् है उससे सत् का निर्माण असम्भव है। (असद् करणात)
२. किसी भी विशेष कार्य के लिए विशेष कारण की ही आवश्यकता महसूस होती है।(उपादनग्रहणात)
३. यदि कार्य की सत्ता को उत्पत्ति के पूर्व कारण में नहीं होती ऐसा माना जाय तो, हमें ऐसा भी मानना पड़ेगा की असत् से सत् का निर्माण हुआ। वास्तव में यह सम्भव नहीं। किसी भी हाल में असत् से सत् का निर्माण नहीं हो सकता।
४. प्रत्येक कारण से प्रत्येक कार्य का निर्माण नहीं होता। केवल शक्तीशाली कारण में ही वांछित कार्य की प्राप्ति हो सकती है। कार्य उसीकारण से निर्मित हो सकता है जिसमें निर्माण की शक्ती हो।
५. निर्माण के पूर्व यदि कार्य को कारण में असत माना जाय तो उसका कारण से सम्बन्धित होना असम्भव हो जाता है। सम्बन्ध उन्हीं वस्तुओं के बीच हो सकता है। यदि दो वस्तुओं में एक का अस्तित्व हो और दूसरे का अस्तित्व नहीं हो तो सम्बन्ध कैसे हो सकता है?
६. अगर ऐसे भी देखा जाए तो कारण और कार्य में अभेद दिखाई देता है। हम उन्हे एक दूसरे से भिन्न नहीं किया जा सकता। दही को दूध से, अथवा वस्त्र को तंतू से भिन्न नहीं किया जा सकता। कारण और कार्य एक ही द्रव्य की दो अवस्थाएँ हैं। द्रव्य की अव्यक्त अवस्था को कारण तथा व्यक्त अवस्था को कार्य कहा जाता है।

सत्कार्यवाद की महत्ता इसलिए है की, सांख्य अपने प्रसिद्ध सिधान्त प्रकृति की प्रस्थापना सत्कार्यवाद के बल पर ही करता है। प्रकृति को सिद्ध करने के लिए सांख्य जितने तर्कों का सहारा लेते हैं, उन सभी तर्कों में सत्कार्यवाद का प्रयोग है। सत्कार्यवाद की दूसरी महत्ता यह है कि उनका विकासवाद सत्कार्यवाद

की ही देन है। विकासवाद का आधार प्रकृति है। प्रकृति से मन, बुद्धी, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच महाभूत इत्यादि तत्त्वों का विकास होता है।^{१९} ये तत्त्व प्रकृति में अव्यक्त रूप में मौजूद रहते हैं। विकासवाद का अर्थ है इन अव्यक्त तत्त्वों को व्यक्त रूप प्रदान करना। विकासवाद का अर्थ सांख्य के अनुसार नूतन सृष्टि का निर्माण नहीं है। सत्कार्यवाद के अभाव में विकासवाद के सिध्दान्त को समझना कठिन है।

प्रकृति का स्वरूप :

जब हम विश्व की ओर नजर ढौड़ाते हैं तो पाते हैं की, विश्व में अनेक प्रकार की वस्तुएँ हैं। जैसे- नदी, पहाड़, कुर्सी, मन, बुद्धी, अहंकार इत्यादि। इनमें से प्रत्येक को अलग अलग कार्य कहा जाता है। इस प्रकार संपूर्ण विश्व कार्य का प्रवाह है। अब प्रश्न उठता है कि, विश्वरूपी कार्य शृंखला का क्या कारण है? विश्व का कारण पुरुष को नहीं माना जा सकता है क्यों की पुरुष कार्य कारण की शृंखला से मुक्त है। न तो वह किसी वस्तु का कारण है, और न तो कार्य है। इसलिए विश्व का कारण पुरुष छोड़कर किसी अन्य तत्त्व को मानना होगा। वह अन्य तत्त्व क्या है? चार्वाक, बौद्ध, न्याय-वैशेषिक तथा मीमांसक इन भारतीय दार्शनिकों का कहना है कि, विश्व का मूल कारण पृथ्वी, जल, वायु और अग्नी के परमाणु हैं। सांख्य इस विचार का विरोध करता है।

विश्व में दो प्रकार की वस्तुएँ दिखाई देती हैं। जिनमें से एक स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म है। नदी, पहाड़, टेबल, वृक्ष आदि विश्व के स्थूल पदार्थ हैं। मन, अहंकार, बुद्धी आदि सूक्ष्म पदार्थ हैं। विश्व का कारण उसे ही माना जा सकता है तो विश्व के स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों की व्याख्या कर सके। यदि विश्व का कारण परमाणु माना जाय तो सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या असंभव है। परमाणुओं द्वारा विश्व के स्थूल वस्तुओं की व्याख्या हो सकती है। परंतु विश्व के सूक्ष्म पदार्थों की व्याख्या सम्भव नहीं होती।

अद्वैत वेदान्त और महायान बौद्ध दर्शन विश्व का कारण चेतना को मानते हैं। परन्तु यह भी विचार अमान्य प्रतित होता है। क्योंकि चेतन से विश्व की सिर्फ सूक्ष्म पदार्थ की व्याख्या हो सकती है। चेतना स्थूल पदार्थों की व्याख्या करने में असमर्थ है।

सांख्य दर्शन सृष्टि (विश्व) का कारण मानने के लिए प्रकृति की स्थापना करता है। प्रकृति एक है। इसलिए उससे विश्व की व्यवस्था की व्याख्या की जा सकती है। प्रकृति जड़ होने के साथ साथ सूक्ष्म भी है। इसलिए प्रकृति सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या करने में समर्थ है। इसलिए सांख्य दर्शन ने विश्व का आधार प्रकृति को माना है। प्रकृति को प्रकृति इसलिए कहा जात है कि यह विश्व का मूल कारण है।^२ परन्तु वह स्वयं कारण हीन है। प्रकृति को प्रकृति के अतिरिक्त विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। प्रकृति को प्रधान कहा जाता है, क्योंकि वह विश्व का प्रथम कारण है। प्रकृति को जड़ कहा जाता है क्योंकि वह विश्व की सभी वस्तुओं को सीमित करती है। प्रकृति को शक्ती भी कहा जाता है क्यों कि उसमें निरंतर गति विद्यमान रहती है।

प्रकृति एक है और वह स्वयं स्वतंत्र है। यद्यपि विश्व प्रत्येक वस्तु प्रकृति पर आश्रित है। प्रकृति के सत्ता के लिए किसी दूसरे वस्तु की अपेक्षा नहीं है। वह विश्व की विभिन्न वस्तुओं का कारण है, परंतु स्वयं अकारण है। प्रकृति निरवयव, शाश्वत तथा दिक् कालातीत है। वह अदृश्य, अव्यक्त, अचेतन है फिर भी सक्रिय है। वह सत्त्व, रजस, तमस गुण से युक्त है।

पुरुष का स्वरूप :

सांख्य दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है पुरुष। पुरुष तत्त्व का स्वरूप देखने के पूर्व प्रकृति और पुरुष की भिन्नता और ध्यान देना बांछनीय होगा। पुरुष चेतन है जबकि प्रकृति अचेतन है। पुरुष सत्त्व, रजस, तमस आदि त्रिगुणों से अतीत है, शून्य है। जबकी प्रकृति इन तीन गुणों से युक्त है। इसलिए पुरुष को त्रिगुणातीत

और प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है। पुरुष निष्क्रिय है जबकि प्रकृति क्रियावान है। पुरुष अनेक है, प्रकृति एक ही है। पुरुष अपरिवर्तनशील है जबकि प्रकृति परिवर्तनशील है। पुरुष की सत्ता स्वयं सिध्द है। सांख्य के अनुसार पुरुष शुद्ध चैतन्य है। उसे जागृत, स्वज्ञ या सुषुप्ति किसी भी अवस्था में माना जाय, उसमें चैतन्य वर्तमान रहता है। वह प्रकाशरूप है। वह स्वयं तथा संसार के अन्य वस्तुओं को प्रकाशित करता है। पुरुष सुख-दुःख तथा पाप-पुण्य से रहित है।

प्रकृति की तरह पुरुष की सत्ता प्रमाणित करने के लिए सांख्य विभिन्न युक्तियों का प्रयोग करते हैं। इन युक्तियों का संकलन सांख्यकारिका के लेखक ने एक श्लोक में किया है। वह श्लोक निर्मांकित है-

“ संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादि विपर्यायादृधिष्ठनात् । परुषोस्ति भोक्तृभावात्
कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्चे । ॥ ”

सृष्टि उत्पत्ति विषयक मत :

सांख्य दर्शन के सृष्टि उत्पत्तिविषयक मत विकासवाद के नामाभिधान से पहचाना जाता है।

सृष्टि की उत्पत्ति का प्रश्न दर्शन का महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। प्रत्येक दर्शन तथा दार्शनिक ने विश्व की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है। साधारणतथा कहा जात है कि, सृष्टि का निर्माण ईश्वर ने शून्य से किसी कालविशेष में किया है। सांख्य इस मत से सहमत नहीं है, क्योंकि वह ईश्वर की सत्ता में अविश्वास करता है। जब ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है तो ईश्वर को सष्टा मानने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? सांख्य के अनुसार यह संसार विकास का फल है, ईश्वर की सृष्टि नहीं है।

प्रकृति ही वह तत्त्व है जिससे संसार की समस्त वस्तुएँ विकसित होती हैं। समस्त विश्व प्रकृति का परिणाम है।^३ प्रकृति तीन गुणों के साम्यावस्था का नाम है। प्रकृति गुण निरन्तर प्रगतिशील रहते हैं, चाहे प्रकृति किसी भी अवस्था में हो। जब

प्रकृति शान्तावस्था में रहती है तब भी प्रकृति के गुणों में परिवर्तन होता है। इस समय प्रकृति के अंदर सरुप परिणाम परिलक्षित होता है। यह प्रकृति की प्रलय अवस्था है। इस अवस्था में प्रकृति किसी भी वस्तु का निर्माण करने में असमर्थ होती है। विकासवाद कि क्रिया तथी आरंभ हो सकती है जब प्रकृति में विरुप परिणाम हो। परंतु विरुप परिणाम के लिए पुरुष और प्रकृति का संयोग परमावश्यक है। दूसरे शब्द में विकास के प्रणयन के लिए पुरुष और प्रकृति का संयोग अपेक्षित है। अकेली प्रकृति विकास नहीं कर सकती है, क्योंकि वह अचेतन है। अकेला पुरुष भी विकास नहीं कर सकता क्यों कि वह निष्क्रिय है। प्रकृति देखे जाने के लिए पुरुष पर आश्रित है और पुरुष मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रकृति की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार दोनों का एक दूसरे के संसर्ग की आवश्यकता महसूस होती है।

परन्तु दोनों का संसर्ग सम्भव नहीं जान पड़ता है, क्योंकि दोनों एक दूसरे के प्रतिकूल एवं विरोधात्मक है। प्रकृति का संसर्ग एक समस्या है, जिसका समाधान कठिन जान पड़ता है।

सांख्य इस समस्या का समाधान करने के लिए उपमाओं को प्रयोग करता है। जिसमें प्रथम उपमा इस प्रकार है- जिस प्रकार जंगल में आग लगने पर एक अन्धा और एक लंगड़ा व्यक्ति एक दूसरे की सहायता से जंगल से पार होते हैं, उसी प्रकार जड़ प्रकृति और निष्क्रिय पुरुष के सहयोग से विकासवाद का प्रारंभ होता है। प्रकृति पुरुष के अभाव में अन्धी है और पुरुष प्रकृति के बिना पंगु है। इस उपमा में प्रकृति की तुलना अन्धे व्यक्ति से तथा पुरुष की तुलना लंगड़े व्यक्ति से की गई है। जिस प्रकार चुम्बक सन्निधी से लोहे को चलाय मान करता है। उसी प्रकार पुरुष की सन्निधी-मात्र से प्रकृति क्रियाशील होती है। इस उपमा के अतिरिक्त पुरुष और प्रकृति को अन्धे और लंगड़े के सहयोग की उपमा दी गयी है। जिस प्रकार अन्धा लंगड़े के कन्धे पर बैठा और दोनों ने एक दूसरे के सहयोग से जंगल को पार किया, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष एक दूसरे का सहयोग

करते हैं। प्रकृति को अन्धे के सदृश तथा पुरुष को लंगडे के सदृश माना गया है। जिस प्रकार लंगडा अन्धे को पथ प्रदर्शन करता है उस प्रकार पुरुष प्रकृति का पथ प्रदर्शन करता है। अचेतन प्रकृति चेतन पुरुष के प्रयोजन को प्रमाणित करने के लिए जगत् का विकास करती है। प्रकृति का विकास प्रयोजनात्मक है। अचेतन होने के बावजूद प्रयोजन संचलित होती है। इसलिए सांख्य का सिद्धांन्त अचंतन प्रयोजनवादी है। जिस प्रकार गाय के स्तन से अचेतन दूध बछडे के पालन पोषण के लिए प्रवाहित होता है या जिसप्रकार अचेतन वृक्ष मनुष के भोग के लिए फल निर्माण करते हैं, उसी प्रकार अचेतन प्रकृति पुरुष के लाभ के लिए विकास करती है। विकास का उद्देश्य पुरुष के भोग में सहायता प्रदान करना है। पुरुष के मोक्ष के निमित्त प्रकृति जगत् का प्रलय करती है। पुरुष और प्रकृति के पार्थक्य के ज्ञान के कारण मोक्ष की प्राप्ती होती है। पुरुष अनेक हैं। इसलिए कुछ पुरुषों के मोक्ष के बाद भी अन्य पुरुषों के भोग के हेतु विश्व की सृष्टि होती है। सक्रिय रहना प्रकृति का स्वभाव है। मोक्ष की प्राप्ती के साथ ही साथ प्रकृति की क्रिया रुक जाती है। जिस प्रकार दर्शकों के मनोरंजन के बाद नर्तकी नृत्य करना बन्द कर देती है उसी प्रकार पुरुष के विवेकज्ञान के बाद प्रकृति सृष्टि से अलग हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति निरंतर किसी न किसी रूप में पुरुष की अपेक्षा महसूस करती है।

जिस प्रकार चुम्बक लोहा को अपनी ओर आकृष्ट करता है, उसी प्रकार सक्रिय प्रकृति चेतन पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करती है। इस उपमा में पुरुष की तुलना लोहा तथा प्रकृति की तुलना चुम्बक से की गई है।

कोई भी दार्शनिक जब उपमाओं का सहारा लेता है तब उसके दर्शन में असंगति आ जाती है। इसका कारण यह है की उपमाओं द्वारा जो व्याख्या होती है वह अतार्किक कही जाती है। अतः उपमाओं पर आधारित पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध की व्याख्या भी अमान्य ही कही जायेगी।

सांख्य की इन कठिनाईयों से घबराकर कहात है कि पुरुष और प्रकृति के बीच यथार्थ संयोग नहीं होता है। अपितु सिर्फ निकटता का सम्बन्ध होता है। पुरुष और प्रकृति का सान्निध्य ही प्रकृति की साम्यावस्था भंग करने के लिए पर्याप्त है। ज्योंही पुरुष प्रकृति के समीप आता है त्योंही प्रकृति की साम्यावस्था भंग हो जाती है। जिसके फलस्वरूप गुणों में विरुप परिवर्तन आरम्भ होता है। सर्वप्रथम रजस जो क्रिया का प्रेरक है, परिवर्तनशील होता है। जिसके फलस्वरूप तमस और सत्त्वगुण गतीशील हो जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति में भीषण खलबली मच जाती है। एक प्रकार का गुण दूसरे प्रकार के गुणपर अधिपत्य प्राप्त करने का प्रयास करता है। अधिक बल वाले गुण न्यून बल वाले गुण को अभिभूत कर देते हैं। गुणों के बल में परिवर्तन होने के कारण भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न गुण प्रबल हो जाते हैं। कभी सत्त्वगुण को प्रबलता मिलजी है, तो कभी रजो गुण को, तो कभी तमो गुण को प्रधानता मिलती है। प्रत्येक गुण की प्रधानता के साथ साथ नये पदार्थों का अविर्भाव होता है।

यह जानने के बाद कि विकासवाद का आरम्भ कैसे होता है विकासवाद का क्रम क्या है? यह भी जानना आवश्यक होता है। सांख्य दर्शन के अनुसार विकास का क्रम कुछ इस प्रकार है।

सर्व प्रथम प्रकृति से महत्-तत्त्व का अविर्भाव होता है। महत का अर्थ महान होता है। परिमाण की दृष्टीसे महत् प्रकृति के सभी विकृतियों से बाहर है। विराट विश्व महत् में बीज के रूप में समाविष्ट रहता है।

इस तत्त्व की व्याख्या बाह्य और आंतरिक दोनों दृष्टीसे की जा सकती है। बाह्य दृष्टि से यह महत् कहा जाता है परंतु आंतरिक दृष्टि से बुधि कहलाती है। जो भिन्न जीवों में विद्यमान रहती है। बुधि की सहायता से किसी विषय पर निर्णय दिया जाता है। बुधि पुरुष के लिए सहायक है। बुधि स्वयं प्रकाशमान है तथा वह अन्य वस्तुओं को भी प्रकाशित करती है।

यद्यपि बुधि त्रिगुणात्मक है फिर भी बुधि का स्वरूप सात्त्विक माना जाता है। क्यों कि बुधि का प्रादूर्भाव सत्त्व गुण के अधिकाधिक प्रभाव के कारण होता है। जब बुधि में सत्त्व गुण की प्रबलता होती है तो बुधि में ज्ञान, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य जैसे गुणों का विकास होता है। परन्तु जब बुधि में जमो गुण की प्रधानता होती है तो बुधि में अज्ञान, अधर्म, आसक्ति, अपूर्णता जैसे गुणों का प्रादूर्भाव होता है। प्रकृति का प्रथम विकास होने के कारण बुधि में पुरुष का चैतन्य प्रतिबिंबित होता है।

प्रकृति का दूसरा विकार अहंकार है। अहंकार का कारण बुधि है। किसी वस्तु के संबंध में बुधि का मै या मेरा भाव रखना अहंकार है। अहंकार के कारण ही मनुष्य से व्यक्तित्व तथा स्वार्थ की भावना का विकास होता है। अहंकार अभिमान का पर्याय है। सांख्यकारिका में अभिमान की परिभाषा अभिमानोऽहंकार ऐसी दी गयी है। अहंकार स्वयं भौतिक है। अहंकार विश्व के सभी व्यवहारों का आधार है। जब किसी कलाकार के मन में किसी वस्तु के निर्माण का संकल्प उठता है, तब वह निर्माण के कार्य में प्रवृत्त होता है। अहंकार का प्रभाव पुरुष पर पूर्ण रूप से पड़ता है। अहंकार के वशीभूत होकार पुरुष अपने आप को कर्ता समझने लगता है। यद्यपि वह अकत्तार है। अहंकार के प्रभाव में आकार पुरुष अपने को कामी तथा संसार की वस्तुओं का स्वामी समझने लगता है। इस प्रकार अहंकार के कारण पुरुष मिथ्या श्रम में पड़ जाता है।

अहंकार तीन प्रकार का होता है।

१) वेचारिक अथवा सात्त्विक अहंकार :

सात्त्विक अहंकार अहंकार का वह रूप है। जिसमें सत्त्व गुण की प्रधानता होती है। सात्त्विक अहंकार से मन, पाँच ज्ञानेंद्रिया और पाँच कर्मेंद्रियों का विकास होता है। पाँच ज्ञानेंद्रिया ये हैं- चुक्षुंद्रिय, श्रवणेंद्रिय, ग्राणोंद्रिय, रसनेंद्रिय और स्पर्शेंद्रिय। इन पाँच इंद्रियों से क्रमशः रूप, शब्द, गंध, स्वाद और स्पर्श का ज्ञान

प्राप्त होता है। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि, आँख, कान, नाक, जिक्हा तथा त्वचा वास्तविक इंद्रियाँ नहीं हैं। इन में से प्रत्येक में जो शक्ति समाविष्ट है उसे ही इंद्रियाँ कहना उचित है। पाँच कर्मेंद्रियाँ ये हैं- वाक, पाणि, पाद, पायुष और उपस्थि। ये पाँच इंद्रियाँ शरीर के क्रमशः मुख, हाथ, पैर, मलद्वार, जननेंद्रिय इन अंगों में स्थित हैं। इनके कार्य हैं क्रमशः बोलना, पकड़ना, चलना, फिरना, मलविसर्जन तिता संतान उत्पन्न करना। मुख, पैर, हाथ आदि कर्मेंद्रियाँ नहीं हैं, अपितु इनमें निहित शक्ति ही कर्मेंद्रियाँ हैं, जो कार्य सम्पादित करते हैं। मन एक मुख्य इंद्रिय है। यह आंतरिक इंद्रिय है जो ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों का उनके विषयों की ओर प्रेरीत करता है। मन सूक्ष्म है, यद्यपि वह सावयव है। सावयव होने के कारण वह विभिन्न इंद्रियों के साथ एक ही समय संयुक्त हो सकता है। मन विभिन्न इंद्रियों से प्राप्त संवेदनाओं को अर्थ जोड़कर प्रत्यक्ष के रूप में परिणत करता है।

२) भूतादि अथवा तामस अहंकार :

तामस अथवा भूतादि अहंकार अहंकार का वह रूप है, जिसमें तमोगुण की प्रधानता रहीत है। तामस अहंकार से पंच तन्मात्राएँ का प्रादूर्भाव होता है। तन्मात्राएँ भूतों का सूक्ष्म रूप है। सच में देखा जाय तो ये भूतों के समारत्त्व हैं। तामस अहंकार का कार्य होने के कारण ये अचल हैं। तन्मात्राएँ पाँच प्रकार की होती हैं। शब्द के सूक्ष्म रूप को शब्द तन्मात्रा, रूप को रूप तन्मात्रा, गंध के सारतत्त्व को गंध तन्मात्रा, स्वद के सार को रस तन्मात्रा तथा स्पर्श के सूक्ष्म रूप को स्पर्श तन्मात्रा कहा जाता है।

तन्मात्रओं का ज्ञान प्रत्यक्ष से संभव नहीं है। क्योंकि वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। उनका ज्ञान अनुमान से संभव है।

पंच पत्मात्रा से पंच महाभूतों का प्रादूर्भाव होता है। पंचतन्मात्रा और पंच महाभूत में अंतर यह है कि पंच तन्मात्रा सूक्ष्म हैं जबकि पंच महाभूत स्थूल हैं। पंच तन्मात्रा से पंच महाभूत का विकास इस प्रकार होता है।

शब्द तन्मात्रासे आकाश की उत्पत्ति होती है। स्पर्श शब्द तन्मात्रासे वायु का विकास होता है। रुप स्पर्श शब्द तन्मात्रासे अग्नि का विकास होता है। रस रुप शब्द तन्मात्रा से जल का अविर्भाव तथा गंध रस रुप स्पर्श शब्द तन्मात्रासे पृथ्वी का विकास होता है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये पाँच महाभूत हैं। पंचभूतों में प्रत्येक का विशिष्ट गुण माना गया है। पंच भूतों का भिन्न भिन्न परिमाणों में सम्मिश्रण होता है, जिसके फलस्वरूप विश्व की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण होता है।

३) राजस अथवा तेजस अहंकार :

राजस अहंकार अहंकार का वह रूप है। जिस में रजो गुण की प्रमुखता रहती है। इससे किसी वस्तु का प्रादुर्भाव नहीं होता। राजस अहंकार सात्त्विक और तामस अहंकारों को शक्ति प्रदान करता है। जिसके फलस्वरूप वह विभिन्न विषयों का निर्माण करने योग्य होते हैं। इस प्रकार राजस अहंकार अन्य दो अहंकारों का सहायक मात्र है।

विकास का यह क्रमः सांख्य कारिका में वर्णित है। विकास के विभिन्न क्रमों को देखने से स्पष्ट हो ताता है कि विकासवाद विभिन्न तत्त्वों का खेल है। ये विभिन्न तत्त्व प्रकृति, बुद्धी, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेंद्रिय, पाँच तन्मात्रा, पाँच महाभूत आदि २४ होते हैं। अन चौबिस तत्त्वों में अगर पुरुष को जोड़ा जाय तो पच्चीस तत्त्व होते हैं। ये पच्चीस तत्त्व सांख्य दर्शन में अत्याधिक प्रसिद्ध हैं। इन पच्चीस तत्त्वों में चार प्रकार के तत्त्व हैं।

- १) पुरुष वह तत्त्व है जो न कार्य है न कारण।
- २) प्रकृति तत्त्व केवल कारण है।
- ३) बुद्धी, अहंकार, तन्मात्राएँ कारण भी हैं और कार्य भी।
- ४) मन, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रिया तथा पंच महाभूत यह सिर्फ कार्य हैं।

सांख्य दर्शन का विकासवाद निम्नलिखित आकृति से स्पष्ट किया जा सकता है।

पुरुष प्रकृति

महत या बुद्धि

अहंकार

सात्त्विक अहंकार	राजस अहंकार	तामस अहंकार
मन पाँच ज्ञानेंद्रिया पाँच कर्मेंद्रिया		पंच तन्मात्रा
		पंच महाभूत

सांख्य का विकासवाद निष्प्रयोजन अथवा यन्त्रवत् नहीं है। विकासवाद के पीछे प्रयोजन है। विकास का आधार अचेतन प्रकृति है। फिर अचेतन प्रकृति का प्रयोजन कैसे हो सकता है? ऐसा सोचना असंगत है। परन्तु सांख्य ने बतलाया है कि प्रयोजन सिर्फ चेतन वस्तुओं का नहीं होता। बल्कि अचेतन वस्तु का भी प्रयोजन हो सकता है। सांख्य का विकासवाद अचेतन प्रयोजनवाद है। अचेतन प्रयोजनवाद के अनेक उदाहरण हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी पाते हैं। जैसे कि बछड़े के पोषण के लिए गाय के स्तन से दूध प्रवाहित होता है। दूध अचेतन है फिर भी बछड़े के लिए प्रवाहित होता है। पृथ्वी से प्राप्त जल भी अचेतन है, फिर भी वह जीवों को आनन्द प्रदान करने के उद्देश से प्रवाहित होता है। उसी तरह अचेतन प्रकृति विकास के द्वारा पुरुष के प्रयोजन को अपनाने में प्रयत्नशील रहती है।

सांख्य और डार्विन के विकासवाद में अंतर :

आधुनिक पाश्चात्य विचारक डार्विनने विकासवाद का एक अनोखा प्रारूप हमें दिया है। मानवी जीवन के सभी क्षेत्रों के विकास की व्याख्या करने के लिए डार्विन का विकासवाद एक अनोखा तथा महत्वपूर्ण सिध्दांत है। फिर भी सांख्य का विकासवाद डार्विन के विकासवाद से बिलकुल अलग है।

सांख्य का विकासवाद अति प्राचीन सिध्दांत है जबकी डार्विन का सिध्दान्त आधुनिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है।

सांख्य का विकास प्रयोजनवादी है। पुरुष के भोग तथा मोक्ष के लिए प्रकृति विकसित होती है। परंतु डार्विन विकास क्रिया को यांत्रिक मानते हैं। उनके अनुसार विकास के पिछे कोई प्रयोजन नहीं।

सांख्य का विकास विश्व के विकास का सिध्दान्त है परंतु डार्विन का मत जीवनधारियों के विकास का सिध्दान्त है।

डार्विन के अनुसार पुद्गल के सक्रिय होने से विकास का प्रारंभ होता है, परन्तु सांख्य मत में प्रकृति पुरुष के निकटता से विकास का आरंभ होता है।

सांख्य मत विकास की दार्शनिक व्याख्या है, परन्तु डार्विन मत वैज्ञानिक व्याख्या है।

विकासवाद की विशेषताएँ :-

१. विकासवाद में सृष्टि का अर्थ निर्माण नहीं बल्कि आविर्भाव माना गया है।

समस्त वस्तुएँ प्रकृति में अव्यक्त हैं जिनका विकास के द्वारा प्रकाशन होता है।

२. विकासवाद में विकास का क्रम सूक्ष्म से स्थूल की ओर माना गया है।

३. विकासवाद में सृष्टि और प्रलय इन दोनों के क्रम को माना गया है।

४. विकासवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिससे समस्त विश्व का विकास होता है, ऐसे जड़ को अविनाशी माना गया है।

प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध :

सांख्य द्वैतवाद का समर्थक है। द्वैतवाद उस तत्त्वशास्त्रीय सिद्धान्त को कहते हैं जो दो प्रकार के तत्त्वों की सत्ता में विश्वास करता है। सांख्य के दो प्रकार के तत्त्व हैं पुरुष और प्रकृति। ये दोनों तत्त्व एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। दोनों तत्त्व एक दूसरे से नितांत स्वतंत्र हैं। प्रकृति से पुरुष का निर्माण असम्भव है। इस प्रकार सांख्य भौतिकवाद अथवा अध्यात्मवाद का खंडन कर द्वैतवाद का मंडन करता है।

सांख्य के मतानुसार पुरुष और प्रकृति के सहयोग से सम्पूर्ण विश्व निर्मित होता है। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक होगा की, पुरुष और प्रकृति का सम्बन्ध दो भौतिक पदार्थों की तरह नहीं है। यह एक अद्भुत सम्बन्ध है जो एक दूसरे को प्रभावित करता है। जिस प्रकार विचार का प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उसी प्रकार पुरुष का प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है। अब प्रश्न यह है कि पुरुष और प्रकृति आपस में सम्बन्धित कैसे होते हैं? दोनों का सम्बन्ध किस प्रकार का है? यह सांख्य दर्शन की कठीन समस्या है। दोनों का संयोग परमावश्यक है। क्योंकि पुरुष का प्रकृति से संयोग होने के फलस्वरूप ही प्रकृति की साम्यावस्था टूटती है, जिसके फलस्वरूप विकास की क्रिया का आरम्भ होता है। इस प्रश्न का समाधान सांख्य ने विभिन्न उपमाओं से देने का भरसक प्रयास किया है। जैसे-लोहा और चुम्बक, अन्धा और लंगड़ा, दूध और बछड़ा आदि।

सांख्य दर्शन और परमाणुवाद :

सांख्य दर्शन ऐसे परमाणुवाद अस्तित्व नहीं मानता जिसका फिर न विभाजन किया जा सके। सांख्य केवल प्रकृति की उत्पादकता पर विश्वास करता

है। प्रकृति ही आदि उपादान है, बाकी सबकाग्र है। अणु स्वयं प्रकृति से उत्पन्न कार्य है। अतः यह नित्य नहीं हो सकते, इनका विभाजन हो सकता है, और वे सदा रहनेवाले हैं।

सांख्य का सृष्टि निर्माण का चिंतन अन्य भारतीय दर्शनों के चिंतन से बिलकुल अलग है। वह विकासवाद का एकमात्र भारतीय उदाहरण है। सृष्टि निर्माण का सबसे अलग चिंतन ही सांख्य दर्शन की प्रमुख विशेषता है।

संदर्भ :-

१. सांख्यतत्त्वं कौमुदि कारिका - २२
२. मुलेमुलाभावादंमूलम् - सांख्य सूत्र ११६७
३. सांख्य प्र सूत्र (६१३५-६१३७)

वैशेषिक दर्शन में इस समस्या का चिंतन (वैशेषिक दर्शन का सृष्टि सिधान्त (परमाणुवाद))

वैशेषिक दर्शन भारतीय विचारधारा में आस्तिक दर्शन कहा जाता है, क्योंकि वह अन्य आस्तिक विचार धाराओं की तरह वेद की प्रामाणिकता पर विश्वास करता है। इस दर्शन प्रणेता कणाद को ठहराया जाता है। उनके विषय में कहा जाता है कि वे अन्न कणों की खेत से चुनकर अपने जीवन का निर्वाह करते थे। इसीलिए उनका नाम कणाद पड़ा-ऐसा विद्वानों द्वारा बताया जाता है। कणाद का असल नाम उलूक था। इसी कारण वैशेषिक दर्शन को कणाद अथवा औलुक्य दर्शन की भी संज्ञा दी जाती है।

वैशेषिक दर्शन को वैशेषिक दर्शन कहलाने का कारण यह बतलाया जाता है कि, इस दर्शन में विशेष नामक पदार्थ की व्याख्या की गयी है। विशेष को मानने के कारण ही वैशेषिक कहा गया है।

वैशेषिक दर्शन का विकास ३०० ई.पूर्व हुआ ऐसा माना जाता है। वैशेषिक के ज्ञान का आधार वैशेषिक सूत्र कहा जाता है। जिसके रचयिता महर्षिक कणाद को कहा जाता है। प्रशस्तवाद ने वैशेषिक सूत्र पर एक भाष्य लिखा जिसे पदार्थ-धर्म-संग्रह कहा जाता है। वैशेषिक दर्शन का ज्ञान श्रीधर द्वारा लिखित पदार्थ धर्म-संग्रह की टीका से भी मिलता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि, वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन से कहीं अधिक प्राचानी है। उसके ऐसे मानने का कारण यह है कि न्याय दर्शन में वैशेषिक के तत्त्वशास्त्र का प्रभाव दिख पड़ता है। यह जानकारी न्याय सूत्र के अध्ययन से ही प्राप्त होती है। परन्तु वैशेषिक के सूत्रों में न्याय की ज्ञान मीमांसा का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है।

न्याय और वैशेषिक दर्शनों में इतनी अधिक निकटता का संबंध है कि, दोनों को न्याय-वैशेषिक का संयुक्त नाम दिया जाता है। भारतीय दर्शनों के इतिहास में इन दोनों दर्शनों को समान तंत्र कहकर इनके सम्बन्ध को स्पष्ट किया जाता है। न्याय और वैशेषिक दर्शन को समान तंत्र कहना प्रमाणसंगत भी प्रतित होता है। दोनों दर्शन एक दूसरे पर निर्भर है। एक के अभाव में दूसरे की व्याख्या करना संभव नहीं है।

न्याय और वैशेषिक को समान तंत्र कहलाने का प्रधान कारण यह है कि दोनों ने मोक्ष की प्राप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य कहा है। मोक्ष दुःख विनाश की अवस्था है। दोनों ने माना है कि बन्धन का कारण अज्ञान है। अतः तत्त्व-ज्ञान के द्वारा मोक्ष को अपनायसा जा सकता है। इस समानतंत्र के बावजूद इन दोनों दर्शनों में असमानता का भी संबंध है। न्याय दर्शन का मूल उद्देश प्रमाणशास्त्र और तर्कशास्त्र का प्रतिपादन करना है। वैशेषिक दर्शन का उद्देश इसके विपरित तत्त्वशास्त्र का प्रतिपादन कहा जा सकता है। न्याय दर्शन वैशेषिक के तत्त्वशास्त्र शिरोधार्थ करता है, जबकी वैशेषिक दर्शन न्याय के प्रमाणशास्त्र से पूर्णतः प्रभावित है।

न्याय दर्शन में ईश्वर के स्वरूप की जो व्याख्या की गयी है उसे वैशेषिक दर्शन यथास्थिती ग्रहण किया है। इतना ही नहीं बल्की हमारे अध्ययन का जो विषय है- विश्व की सृष्टी- उसे भी दोनों दर्शन समान रूप स्वीकारते हैं। वैशेषिक दर्शन विश्व की सृष्टी के लिए सृष्टिवाद को मानता है। इस सृष्टिवाद को परमाणु सृष्टिवाद भी कहा जाता है, क्योंकि वह विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि से निर्मित मानता है। इन परमाणुओं के अतिरिक्त सृष्टि में ईश्वर का भी हाथ माना गया है। अतः वैशेषिक का सृष्टिवाद नैतिक और अध्यात्मिक दृष्टिकोन पर बल देता है। वैशेषिक के सृष्टिवाद को ही न्यायदर्शन में भी प्रामाणिकता मिली है।

वैशेषिक का सृष्टिवाद अर्थात् परमाणुवाद का स्वरूप देखने पूर्व उनके पदार्थों पर संक्षिप्त दृष्टिक्षेप डालना आवश्यक है। वैशेषिक दर्शन में पदार्थों का विभाजन दो वर्गों में हुआ है।-

भाव पदार्थ -- यह छः प्रकार के हैं।

१) द्रव्य :

यह वैशेषिक दर्शन का प्रथम पदार्थ है। द्रव्य की परिभाषा इन शब्दों में दी गई है- द्रव्य गुण और कर्म का अधिष्ठान है और अपने कार्यों का उपादन कारण है। द्रव्य गुण और कर्म का आधार है। “गुण और कर्म द्रव्य में ही समवेत है”^१ उका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं सोचा जा सकता। जिस सत्ता में गुण और कर्म समवेत रहते हैं उसके आधार को ही द्रव्य कहते हैं।

यद्यति गुण और कर्म द्रव्य में समवेत रहते हैं, फिर भी वे द्रव्य से भिन्न माने जाते हैं। द्रव्य में सामान्य को द्रव्यत्व कहते हैं। द्रव्य नौ प्रकार के होते हैं। पृथ्वी, अग्नी, वायु, जल, आकाश, दिक् काल, आत्मा, मन। इनमें प्रथम पाँच को पंचभूत कहा जाता है। प्रत्येक का एक एक विशिष्ट गुण होता है। जिस भूत के विशेष गुण का ज्ञान जिस इंद्रिय से होता है, वह इंद्रिय उसी भूत से निर्मित है।

वैशेषिक का द्रव्य विचार भौतिकवादी नहीं है। क्योंकि वह भौतिकद्रव्यों के अतिरिक्त आत्मा की सत्ता में विश्वास करता है। उसे अध्यात्मवादी भी नहीं कहा सकता, क्योंकि वह भौतिक द्रव्यों की सत्ता स्वीकार करता है। उनका द्रव्य वस्तुवादी है, क्योंकि वह द्रव्य की सत्ता को ज्ञाता से स्वतंत्र मानता है।

२) गुण :

यह दूसरा पदार्थ है। गुण की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- गुण वह है जो द्रव्य के समवेत है, जो गुण से शून्य है, जो कर्म से शून्य है, जो संयोग

और विभाग का साक्षात् कारण नहीं है और जो अपने कार्य का असमवायी कारण है।

गुण कर्म से भिन्न है। कर्म द्रव्य का सक्रिय रूप है। जबकि गुण द्रव्य का निष्क्रिय रूप है। गुण द्रव्य से भी भिन्न है। द्रव्य अपनी सत्ता के लिए पूर्णतः स्वतंत्र है। द्रव्य का अस्तित्व अपने अप होता है। परन्तु गुण द्रव्यात्रित है। इस प्रकार गुण स्वतंत्र न हो कर परतंत्र है। यहाँ पर पूछा जा सकता है की जब गुण अपने अस्तित्व के लिए स्वतंत्र नहीं है, तब उसे स्वतंत्र पदार्थ क्यों माना जाता है? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि पदार्थ उसे कहा जाता है, जिसका नामकरण हो सके, जो ज्ञेय है। यूँकि गुण का नामकरण होता है, उसका विचार किया जा सकता है, इसलिये उसे स्वतंत्र पदार्थ माना गया है। अतः गुण को स्वतंत्र पदार्थ की कोटी में रखतना न्याय संगत है।

गुण द्रव्य में निवास करता है। इसलिए गुण को अकेला नहीं पाया जा सकता। गुण का लक्षण यह है कि यह गुण से शून्य है। द्रव्य का गुण होता है परन्तु गुण का गुण नहीं होता है। गुण कर्म से भी शून्य होता है। गुण में गति का अभाव होता है। गुण द्रव्य का वह रूप है, जो निष्क्रिय है। गुण संयोग और वियोग का साक्षात् कारण नहीं है। गुण गौण रूप से वस्तु में रहकार सहायक होता। इसलिए उसे असमवायी कारण कहा जाता है। वैशेषिक दर्शन में चौबीस प्रकार के गुण माने जाते हैं। इनमें से कुछ गुण भौतिक तथा कुछ गुण मानसिक हैं।

३) कर्म :

इसका भी आधार द्रव्य ही है। मूर्त द्रव्यों का गतीशील व्यापार कर्म है। मूर्त द्रव्य पाँच हैं- पृथिवी, जल, अग्नी, वायु और मन। कर्म का निवास इन्ही द्रव्यों में होता है। कर्म का निवास सर्वव्यापी द्रव्यों में नहीं होता है, क्योंकि वे स्थान

परिवर्तन से शून्य है। कर्म द्रव्य का सक्रिय रूप है। कर्म निर्गुण होता है। कर्म के द्वारा एक द्रव्य का दूसरे द्रव्यों से संयोग भी होता है। इसलिए कर्म को संयोग और वियोग का साक्षात् कारण माना जाता है।

कर्म गुण से भिन्न है। गुण निष्क्रिय है और कर्म सक्रिय है। गुण स्थाई होता है परंतु कर्मक्षणिक होता है। गुण संयोग और विभाग का कारण नहीं होता है परन्तु कर्म संयोग और विभाग का कारण ही होता। इस विभिन्नता ओं के बावजूद दोनों में यह सादृश्य है कि वे द्रव्य में निवास करते हैं। कर्म और गुण की कल्पना द्रव्य के आभाव में नहीं की जा सकती। कर्म द्रव्य से भिन्न है। द्रव्य की सत्ता के लिए किसी वस्तु की आपेक्षा नहीं है। वह स्वतंत्र है। इसके विपरीत कर्म परतंत्र है। कर्म अपने आप खड़ा न होकर द्रव्य रूप आश्रित रहता है। कर्म को पदार्थ इसलिए कहा जाता है कि कर्म के बारे में दृष्टिकोन से गुण को पदार्थ कहा जाता है उसी दृष्टिकोण से कर्म को पदार्थ कहा जाता है। कम्प की अनेक विशेषताएँ हैं—

कर्म की पहली विशेषता यह है कि कर्म क्षणिक होता है। दूसरी विशेषता यह है कि यह सभी द्रव्यों में पाया नहीं जाता। तिसरी विशेषता यह है कि कर्म से निश्चित द्रव्यों का निर्माण असंभव है। चौथी विशेषता यह है कि कर्म गुण से शून्य होता है, निर्गुन है। कर्म पाँच प्रकार के होते हैं—

उत्क्षेपन(उपर फेंकना),

अवक्षेपन(निचे फेंकना),

आकुंचन,

प्रसारण तथा

गमन

४) सामान्य :

यह वैशेषिक का चौथा पदार्थ है। सामान्य वह पदार्थ है जिसके कारण एक ही प्रकार के विभिन्न व्यक्तियों को एक जाति के अन्दर रखा जाता है। जैसे-राम,श्याम,यदु,रहिम इत्यादि मनुष्यों में भिन्नता होने के बावजूद उन सबों को मनुष्य कहा जाता है। यही बात गाय, घोड़े इत्यादि जातिवाचक शब्दों पर लागु होती है। संसार की समस्त गायों को गाय के वर्ग में रखा जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वह कौनसी वस्तु है जिसके आधारपर संसार की विभिन्न वस्तुओंको एक नाम से पुकारा जाता है? उसी सत्ता को सामान्य कहा जाता है। सामान्य व्यक्तीयों अथवा वस्तुओं में समानता प्रस्तावित करती है।

वैशेषिक के मतानुसार सामान्य द्रव्य, गुण और कर्म में रहता है। सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष से होता है। सामान्य के तीन भेद होते हैं- पर,अपर,परापर। पर-सामान्य उसे कहा जाता है जो अत्याधिक व्यापक है। सत्ता पर सामान्य का उदाहरण है। सबसे छोटे सामान्य को अपर सामान्य कहा जाता है। घटत्व इसका उदाहरण है। बीच के सामान्य को परापर सामान्य कहा जाता है। इस सामान्य का उदाहरण द्रव्यत्व है।

वैशेषिक के सामान्य की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं- सामान्य नित्य है, एक है और अनेक वस्तुओं में समाविष्ट है एक वर्ग के सभी व्यक्तीयों में एक ही सामान्य होता है। इसका कारण यह है कि एक वर्ग के विभिन्न व्यक्तियों का एक ही आवश्यक गुण होता है। मनुष्य का सामान्य गुण मनुष्यत्व और गाय का सामान्य गुण गोत्व होता है। यदि एक ही वर्ग के व्यक्तीयों के दो सामान्य होते तो वे सामान्य परस्पर विरोधी होते।

सामान्य की दूसरी विशेषता यह है की सामान्य नित्य है।व्यक्तीयों का जन्म होता है और नाश होता है परन्तु उसका सामान्य अविनाशी होता है। उदाहरण

स्वरूप मनुष्योंका जन्म और उनकी मृत्यु होती है, परन्तु उनका सामान्य मनुष्य शाश्वत है। सामान्य अनादि और अनन्त है।

सामान्य की तीसरी विशेषत यह है कि एक ही सामान्य उसी वर्ग के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में समाविष्ट रहता है। मनुष्यत्व यह सामान्य संसार के सभी मनुष्यों में निहित है। गोत्व सामान्य विश्व की समस्त गायों में समाविष्ट है। यही कारण है कि सामान्य अनेकानुगत (अनेक व्यक्तियों में समवेत) है।

५) विशेष :

यह सामान्य के ठीक विपरित है। विशेष नित्य द्रव्य की वह विशिष्टता है जिससे वह अन्य नित्य द्रव्यों से पहचाना जाता है। दिक्, काल, आत्मा, मन, पृथ्वी, वायु, जल और अग्नि के विशिष्टता की व्याख्या के लिए विशेष को अपनाया जाता है। यह द्रव्य निखयव है। अतः इन द्रव्यों को एक दूसरे से अलग करना कठीन जान पड़ता है। इतना ही नहीं, एक प्रकार के विभिन्न द्रव्यों को भी एक दूसरे से अलग करना कठीन जान पड़ता है। प्रत्येक निखयव नित्य द्रव्य विशेष के कारण एक दूसरे द्रव्य से भिन्न होता है। विशेष की सत्ता स्वतंत्र है। वह नित्य, असंख्य, अदृश्य तथा परमाणु की तरह अप्रत्यक्ष है।

६) समवाय :

यह एक प्रकार का सम्बन्ध है। समवाय वह सम्बन्ध है जिसके कारण दो पदार्थ एक दूसरे में समवेत रहते हैं। यह संबंध अयुत्तसिध्द वस्तुओं के बीच होता है। अयुत्तसिध्द वस्तुएँ वे हैं जिनका अस्तित्व पृथक नहीं रह सकता। उदाहरण स्वरूप गुण और द्रव्य, कर्म और द्रव्य, सामान्य और व्यक्ति अयुत्तसिध्द वस्तुएँ हैं। समवाय संबंध नित्य होता है। समवाय एक ही होता है, इसके विपरित विशेष अनेक होते हैं। समवाय का ज्ञान प्रत्यक्ष से संभव नहीं है।

७) अभाव :

यह वैशेषिक दर्शन का सातवाँ पदार्थ है। अन्य छः पदार्थ भाव पदार्थ हैं, जबकि यह पदार्थ अभावात्मक है। अभाव किसी वस्तु का न होना कहा जाता है। अभाव का अर्थ किसी वस्तु का किसी विशेष काल में किसी विशेष स्थान में अनुपस्थिती है। अभाव शून्य से भिन्न है। अभाव को शून्य समझना श्रामक है। अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है। अभाव को पदार्थ मानना पदार्थ के शाब्दिक अर्थ (पद अर्थ) से भी प्रमाणित है। यदि अभाव को नहीं माना जाय तो संसार की सभी वस्तुएँ नित्य बन जाएंगी। वस्तुओं का नाश असम्भव हो जायेगा। अभाव स्वतंत्र पदार्थ है। वैशेषिक का मोक्ष सम्बन्धी विचार भी अभाव को प्रामाणिकता प्रदान करता है।

वैशेषिक के पदार्थ विषयक इस विवेचन की पृष्ठभूमी पर उनका सृष्टीवाद अथवा परमाणुवाद देखना उचित होगा।

सृष्टी और प्रलय का सिध्दान्त :

न्याय वैशेषिक दर्शन अन्य भारतीय दर्शनों की तरह सृष्टि के निर्माण के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिध्दान्त को अपनाता है। सांख्य छोड़कर भारत के प्रत्येक दर्शन ने सृष्टिवाद के सिध्दान्त को शिरोधार्य किया है। परन्तु वैशेषिक के सृष्टि सिध्दान्त की कुछ विशेषताएँ हैं, जो इसे अन्य सृष्टि सिध्दान्तों से अनुठा बना देती हैं।

वैशेषिक के मतानुसार सृष्टि का निर्माण परमाणुओं से हुआ है। ये परमाणु चार प्रकार के हैं।

१) पृथ्वी परमाणु -

पृथ्वी के परमाणु शाश्वत हैं जबकि उससे बने हुए पदार्थ अनित्य अथवा अशाश्वत हैं।

२) जल परमाणु -

जल के परमाणु शाश्वत हैं जबकि जल से बने हुए सभी पदार्थ अशाश्वत हैं।

३) अग्नि परमाणु -

अग्नि के परमाणु भी नित्य हैं तथा अग्नि से बने हुए पदार्थ अनित्य हैं।

४) वायु परमाणु -

वायु भी नित्य अनित्य है। वायु के परमाणु नित्य हैं परन्तु उससे निर्माण होनेवाले पदार्थ अनित्य हैं।

विश्व का निर्माण इन चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है, इसलिए वैशेषिक का सृष्टि निर्माण सम्बन्धी मत परमाणुवाद का सिधान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माण का अर्थ है विभिन्न अवयवों का संयुक्त हो जाना और विनाश का अर्थ है विभिन्न अवयवों का बिखर जाना। परमाणु निखयव हैं। इसलिए ये निर्माण और विनाश से परे हैं।

वैशेषिक का परमाणुवाद जगत के उसी भाग की व्याख्या करता है, जो अनित्य है। जगत के नित्य भाग की व्याख्या परमाणु सिधान्त के द्वारा नहीं हो पाती। दिक्, काल, आत्मा, मन और भौतिक परमाणुओं की न सृष्टि होती है, और न विनाश ही होता है। अतः वैशेषिक का सृष्टि सम्बन्धी और प्रलय सम्बन्धी सिधान्त अनित्य द्रव्यों की सृष्टि और प्रलय का सिधान्त है।

परमाणुओं के संयुक्त होने से वस्तुओं का निर्माण होता है और परमाणुओं का विच्छेद होने से वस्तुओं का नाश होता है। परन्तु परमाणुओं के संयोजन और पृथक्करण के लिए गति की आवश्यकता होती है। वैशेषिक के मतानुसार परमाणु निष्क्रिय और गतिहीन हैं। उनको गति देने वाला कोई बाहरी कारण है। प्राचीन वैशेषिक दर्शन के अनुसार जीवात्माओं का अदृष्ट ही परमाणुओं को गति प्रदान

करता है। बाद के वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणुओं में गति का निर्माण ईश्वर स्वयं करता है। ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय होता है।

किसी भी वस्तु के निर्माण में उपादान कारण और निमित्त कारण की आवश्यकता होती है। विश्व का उपादान कारण चार प्रकार के परमाणुओं को माना जाता है। विश्व का निमित्त कारण ईश्वर को कहा जाता है। ईश्वर को विश्व का निमित्त कारण इसलिए कहा जाता है कि वह जीवों को उनके अदृष्ट के अनुसार कर्मफल का भोग कराने के लिए परमाणुओं में क्रिया प्रवर्तित करता है।

परमाणुओं का संयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है- दो परमाणुओं संयुक्त होने से एक द्वयणुक निर्माण होता है। तीन द्वयणुक के संयोग से एक त्र्यणुक के संयोग से एक चतुरणुक का प्रादुर्भाव होता है। जब चतुरणुक छोटी बड़ी संख्याओंमें संयुक्त होते हैं, तब छोटे बडे द्रव्य का विकास होता है। स्थूल पृथ्वि, अग्नि, वायु, जल चतुरणुओं के संयुक्त होने के फल कहे जा सकते हैं।

यद्यपि सृष्टि परमाणुओं के द्वारा होती है, फिर भी विश्व में क्रम ओर व्यवस्था देखने को मिलती है। इसका कारण वैशेषिक का आध्यात्मिक दृष्टिकोण कहा जा सकता है। विश्व में जो व्यवस्था देखने को मिलती है, उसका कारण जीवात्माओं का पहले का कर्म है। अदृष्ट नियम से प्रभावित हो कर ही ईश्वर सृष्टि का कार्य सम्पादित करता है। जीवात्मा अपनी बुद्धि, कर्म और ज्ञान के अनुसार ही सुख और दुःख भोगते हैं। जीवात्माओं का सुख दुःख भौतिक नियमों के अधीन नहीं है, अपितु कर्म-नियम के अधिन है। ईश्वर जीवों के सुख दुःख के लिए उनके धर्म और अधर्म के अनुसार परमाणुओं की सहायता से सृष्टि करता है। वैशेषिक ने परमाणुओं के अतिरिक्त सृष्टि में ईश्वर, जीवात्माओं और कर्मनियम को माना है। ईश्वर और जीवात्मा भौतिक नहीं हैं, अपितु अध्यात्मिक हैं। अतः वैशेषिक के परमाणुवाद को सिर्फ भौतिकवादी नहीं कहा जा सकता।

वैशेषिक के अनुसार सृष्टि का चक्र अनन्त काल तक नहीं जारी रह सकता। सृष्टि के बाद प्रलय का प्रादुर्भाव होता है। जिस तरह दिन के बाद नात

का आगमन होता है उसी प्रकार सृष्टि के बाद प्रलय की आवश्यकता महसूस होती है। दिन भर के कठिन परिश्रम से थकजाने के बाद व्यक्ति रात्रिकाल में आराम करता है, उसी प्रकार भिन्न योनियों में सुख-दुःख की अनुभूति प्राप्त करने के बाद जीवों को विश्राम करने का अवसर दिया जाता है। इसी को प्रलय कहा जाता है। एक कल्प के बाद दूसरा कल्प का आगमन होता है। इस प्रकार यह क्रम निरंतर कायम रहता है।

कुछ लोगों के मतानुसार वैशेषिक का परमाणुवाद ग्रीक के परमाणुवाद की नकल है। परंतु यह विचार नितान्त भूमूलक है। ग्रीक परमाणुवाद और वैशेषिक के परमाणुवाद में इतनी विभिन्नता है की यह सोचना कि ग्रीक परमाणुवाद ने वैशेषिक परमाणुवाद को प्रभावित किया है, सर्वधा अनुचित है।

डिमॉक्रिटस और ल्युसिपस ने परमाणुओं को गुण से रहित माना है। परमाणुओं को उन्होंने सिर्फ परिमान से युक्त कहा है। परन्तु कणाद ने परमाणुओं के अन्दर गुणात्मक और परिणामात्मक भेद को माना है। परमाणुओं को उन्होंने गुण से युक्त कहा है। पृथ्वि के परमाणु में गंध, रंग, रस और स्पर्श निहित है। जल के परमाणु में रूप, रस और स्पर्श के गुण वर्तमान हैं। अग्नि के परमाणुओं में रूप और स्पर्श के गुण निहित हैं। वायु के परमाणुओं में रूप और स्पर्श गुण निहित हैं। ग्रीक और वैशेषिक परमाणुवाद में दूसरा अन्तर यह है ग्रीक परमाणुवाद परमाणुओं को स्वभावतः सक्रिय और गतिशील मानता है। परंतु वैशेषिक ने परमाणुओं को स्वभावतः निष्क्रिय और गतिहीन माना है। परमाणुओं में गति का संचालन ईश्वर के द्वारा होता है। तिसरा अन्तर यह है कि, डिमॉक्रिटस ने विश्व का निर्माण सिर्फ परमाणुओं के संयोग से बना माना है। वे भौतिक नियमों के आधार पर ही विश्व की व्याख्या करने में सफल हो जाते हैं। इसके विपरित वैशेषिक ने नैतिक नियमों को भी सृष्टि में सहायक माना है। चौथा अन्तर यह है कि यूनान में जीवात्मा को परमाणुओं से निर्मित माना गया है। जब कि वैशेषिक दर्शन में जीवात्मा को नित्य

तथा परस्पर विरोधी माना गया है। जीवात्माएँ विशेष पदार्थ के अनुसार ही एक दूसरे से भिन्न समझी जाती है।

संदर्भ :

१. वैशेषिक सूत्र - १.१.१५

सांख्य तथा वैशेषिक मतों की तुलना

सांख्य तथा वैशेषिक दर्शन वैसे देखा जाय तो आस्तिक या वैदिक परम्परा के दर्शन है। क्यों कि दोनों दर्शन वेद की प्रामाणिकता पर विश्वास रखते हैं। फिर भी जब दार्शनिक विचारों की बात आती है तब इन दर्शनों में अधिक मत भिन्नता पायी जाती है। खास कर जब सृष्टि निर्माण के चिन्तन की बात आती है तब यह भिन्नता अत्यधिक आधोरिखित होती है।

सांख्य के सृष्टि उत्पत्ति विषयक मत को विकास वाद कहा जाता है। सांख्य के अनुसार यह सृष्टि विकास का फल है। ईश्वर की सृष्टि नहीं है। प्रकृति ही वह तत्त्व है जिससे संसार की सभी वस्तुएँ विकसित होती है। समस्त विश्व प्रकृति का परिणाम है। इसके विपरित अन्य आस्तिक दर्शनों की तरह वैशेषिक सृष्टिवाद को अपनाते हैं। जिसके अनुसार सृष्टि का निर्माण परमाणुओं के द्वारा होता है। इसलिए इस मत को परमाणुवाद भी कहा जाता है। अदृष्ट के नियम से प्रभावित हो कर ही ईश्वर ही सृष्टि का कार्य संपन्न करता है।

सांख्य मतानुसार प्रकृति ही वह तत्त्व है जिससे संसार की समस्त वस्तुओं का निर्माण होता है। प्रकृति तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम है- सत्त्व, रज, तम। प्रकृति के गुण निरन्तर प्रगतिशील रहते हैं, चाहे प्रकृति किसी भी अवस्था में हो। जब प्रकृति शान्तावस्था में होती तब भी प्रकृति के गुणों में परिवर्तन होता है। यह सरूप परिणाम है। इस अवस्था में प्रकृति किसी भी वस्तु का निर्माण करने में असमर्थ होती है। इसी प्रकृति में जब विरुप परिणाम होते हैं, तभी विकासवाद की प्रक्रिया का आरंभ होता है। परंतु विरुप परिणाम के लिए प्रकृति का पुरुषसे संयोग परमावश्यक होता है।

वैशेषिक दर्शन की व्याख्या करते समय भी गुण की चर्चा हुई है। परंतु सांख्य और वैशेषिक के गुण विचार में अनेक विभिन्नताएँ हैं।

वैशेषिक ने गुण शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में किया है। गुण का प्रयोग वहाँ विशेषण के रूप में हुआ है। द्रव्य को सत्य माना गया है, द्रव्य के गुणों को गुण कहा गया है। गुण द्रव्यों के विशेषण है। परंतु जब हम सांख्य दर्शन के गुण की ओर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि वहाँ गुण का प्रयोग विशेष अर्थ में हुआ है। गुण का अर्थ सांख्य ने तत्त्व अथवा द्रव्य से लिया है। गुण प्रकृति द्रव्य का निर्माण करते हैं। जिस प्रकार रस्सी में तीन रेशे होते हैं उसी प्रकार त्रिगुण प्रकृति के द्रव्य हैं।

वैशेषिक और सांख्य के गुणों में दूसरा अन्तर यह है कि सांख्य दर्शन में गुणों का भी गुण होता है। सत्व का गुण हल्कापन है, तमस का गुण भारीपन है, और रजस का गुण क्रियाशीलता है। परंतु वैशेषिक दर्शन में गुण को निर्गुण कहा गया है। गुण की परिभाषा देते समय वैशेषिक ने गुण को गुणविहीत कहा है। वैशेषिक के सभी गुण रंग, शब्द, सुख-दुःख इत्यादि गुण शुन्य हैं।

वैशेषिक और सांख्य के गुणों में तीसरा अन्तर यह है कि वैशेषिक ने गुणों को चौबिस प्रकार का माना है। इन में से कुछ ऐसे भी गुण हैं, जिनका प्रकार भी होता है। उदाहरण स्वरूप रंग एक गुण है। यह भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जैसे-लाल, पिला, हरा इत्यादि। परन्तु सांख्य दर्शन में तीन प्रकार के गुण माने गये हैं। उन गुणों का कोई भेद या प्रकार नहीं।

सांख्य और वैशेषिक के गुणों में चौथा अन्तर यह है कि वैशेषिक दर्शन में गुणों को निष्क्रिय माना गया है। गुण द्रव्य के गतिहीन रूप है जबकि कर्म को वैशेषिकने द्रवय का गतिशील रूप माना। परन्तु सांख्य दर्शन ने इसके विपरीत गुणों को सक्रिय माना है। स्थिर रहना गुणों का लक्षण नहीं कहा जा सकता है। स्थिर रहना गुणों का लक्षण नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि सांख्य गुणों को गतिशील मानता है, जबकि वैशेषिक गुणों को गतिहीन मानता है।

सांख्ये तथा वैशेषिक के अनुसार प्रतिपादित गुणों की समानता पाश्चात्य दर्शनिकों के गुण विषयक मतों से दिखाई जा सकती है। सांख्य दर्शन के गुण साररूप है जो पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा से मेल रखते हैं तथा वैशेषिक दर्शन के गुण गुणधर्म जो पाश्चात्य दर्शन के लॉक, बर्कले के गुणों से मेल रखता है।

वैशेषिक के मतानुसार सृष्टि का निर्माण परमाशुओं से हुआ है। ये परमाणु चार प्रकार के हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायू। विश्व का निर्माण इन चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। परमाणुओं के संयुक्त होने से वस्तुओं का निर्माण होता है और परमाणुओं का विच्छेद होने से वस्तुओं का नाश होता है। परन्तु परमाणुओं के संयोजन और पृथक्करण के लिए गति की आवश्यकता होती है। जिसे प्राचीन वैशेषिक अदृष्ट तथा बाद के वैशेषिक ईश्वर कहते हैं। परमाणु शाश्वत, नित्य, निखवय है। ये निर्माण और विनाश के परे हैं।

सांख्य का ऐसे परमाणुओं के कल्पना से सम्बन्ध नहीं है जिसका फिर विभाजन न किया जा सके। सांख्य केवल प्रकृति की उत्पादकता में विश्वास करता है। प्रकृति ही आदि उपादन है अन्य सब तो कार्य है।^१ जैसे वैशेषिक परमाणु या अणुओं को कारण मानता है वैसे ही सांख्य सर्वत्र प्रकृति की ही अनुवृत्ति मानता है। प्रकृति का ही कार्य सर्वत्र परिलक्षित होता है। इसी अर्थ में प्रकृति विभू है अर्थात् सर्वत्र व्यपक है। वैशेषिक के अनुसार गतिशील अणु उपादान कारण हो सकते हैं। तो प्रकृति में भी गति मान ली जाए तो उसकी उपादानता में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।^२

वैशेषिक दर्शन में परमाणु या अणु ही सृष्टि निर्माण का उपादन कारण माना गया है। लेकिन सांख्य मतानुसार अणु स्वयं प्रकृति से उत्पन्न कार्य है। अतः यह नित्य नहीं हो सकते। इनका विभाजन हो कसता है और ये सर्वदा रहनेवाले नहीं हैं। अणु की यह परिभाषा करना की यह अविभाज्य है, इसके भाग नहीं हो सकते, गलत है। क्यों कि अणु स्वयं कार्य है, कारण नहीं।^३

सांख्य एवं आधुनिक विज्ञान :

आधुनिक विज्ञान के अनुसार वह मूलतत्त्व जिससे सृष्टि बनी है धनात्मक व ऋणात्म विद्युत कणों के रूप में है। इस विद्युत कणों से ही सृष्टि के भिन्न भिन्न पदार्थ बने। एक प्रोटॉन व एक इलेक्ट्रॉन की विशिष्ट दशायुक्त संघात हुआ तो वह युरेनियम बना। इन्ही विद्युत कणों के संयोग से भिन्न भिन्न तत्त्वों के परमाणु पाये जाते हैं। वह तो भूत पदार्थ का एक विशेष प्रकार से संघटित रूप है। उस संघटित रूप का एक क्रिया प्रवाह एक विशेष गति है। सांख्य की भाषा में इसी बात को एक तरह का गुण परिणाम भेद कहा गया है।

चिन्तन, मनन, विचार की स्थिती आज के विज्ञान के अनुसार द्रव्य पदार्थ के उस विशेष संघटित रूप(मस्तिष्क) से भिन्न ही है। यह संभव है कि आज जो गुण प्राणी मस्तिष्क का है वह कालान्तर में एक ऐसे गुण में परिवर्तित हो जाए। जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। जिस प्रकार अप्राण वस्तु में प्राण का विकास एक अद्भूत घटना थी उसी प्रकार किसी अलौकिक गुण का विकास एक अद्भूत प्राण और चेतनाधारि में संभव है। मनुष्य या किसी भी चेतनाधारी जीव के विकास में कितनी अधिक संभावनाएँ हैं इसकी कल्पना हम साधारण तया नहीं कर सकते।^४

सांख्य की भाँति आधुनिक विज्ञान, मन-बुद्धि अहंकार को अलग अलग से कारण-कार्य आदि नहीं मानता। किन्तु वस्तुओं के नानात्व के सम्बन्ध में जो धारणा सांख्य दर्शन में है, आधुनिक विज्ञान के अनुसार इस सृष्टि की प्रक्रिया का कोई निश्चित उद्देश प्रमाणित नहीं।^५

आज से करोड़ो वर्ष पूर्व समुद्र के किनारे निछले पानि में छोटे छोटे जीव निर्माण होने लगे थे। जीवनानुरूप दशाओं के विकसित हो जाने पर प्रश्न यह था कि इस सूक्ष्मतर शरीर में उदय होने के बाद क्यों वह प्राण अनेक भिन्न रूपों में विकसित हुआ? ऐसा करने की उसे क्या आवश्यकता थी? दूसरा प्रश्न यह भी है

कि, कौन से ढंग का अनुसरण करके उस आदि प्राण का अनेक रूपों में विकास हुआ? क्यों आदि प्राण का भिन्न रूपों में विकास हुआ?

वैानिकों की मान्यता है कि, आदि मूल तत्त्व वास्तव में एक वस्तु नहीं, एक स्थिर पदार्थ नहीं। वह तो एक प्रक्रिया है जो प्रतिपल होती रहती है। उसी प्रक्रिया के फलस्वरूप आदि भूततत्त्व के अनेक रूप विकसित होते रहते हैं। बनते रहते हैं तथा बिगड़ते रहते हैं। क्या वह प्रक्रिया किसी निश्चित उद्देश से ही रही है? क्या यह गति किसी गन्तव्य की ओर है? वैज्ञानिक यह सब नहीं जानता। वह तो इतना ही जानता है कि, यह गति, यह प्रक्रिया, यह विकास होता रहता है। मनुष्य के समान गहनतम चेतना विकसित होने पर वह मनुष्य उस विकास प्रक्रिया में अपनी और से किसी भी उद्देश कल्पना करें किन्तु वैज्ञानिक के दृष्टि से उस आदि द्रव्य या प्रकृति में या उसकी गति में कोई उद्देश्य निहित नहीं होता, जैसा सांख्य दर्शन का प्रतिपादन है।

वैशेषिक एवं आधुनिक विज्ञान :

वैशेषिक दर्शन में बाह्य जगत का निरूपण द्रव्य, गुण, कर्म आदि सात पदार्थों के रूप में किया गया है, वह किसी अंश में दार्शनिक और किसी अंश में भौतिक विज्ञान संबंधी है। उदाहरणार्थ संसार का द्रव्य आदि सात पदार्थों में विभाजन एक दार्शनिक प्रक्रिया है। किन्तु पृथ्वि, जल आदि के चार प्रकार के परमाणुओं का निरूपण और उससे स्थूल पदार्थों की उत्पत्ति का वर्णन भौतिक विज्ञान संबंधी है, जो आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से नितांत उपहासारचद सिध्द हो चुका है। जिसका मूल्य केवल ऐतिहासिक की दृष्टि से रह गया है।^६

जल के रूप आदि की कल्पना, जलीय वायु एवं तेजस आदि शरीरों की कल्पना आज की विज्ञान की दृष्टि से एक तरस का विषय है। जल के परमाणु की बात करना इसलिए उपहासात्मक है कि, जल हायड्रोजन के दो अणु व ऑक्सिजन के एक अणु से बना है, यह आधुनिक विज्ञान ने दिखाया है। उसका

कोई रंग नहीं होता। अतः शुल्क आदि रंगों की कल्पना नितान्त अवौनिक है। विज्ञान के अनुसार जल सर्वथा स्वादरहित होता है। जल के स्पर्श को शीत मानना भी वैज्ञानिक नहीं, जैसा कि वैशेषिक मानते हैं। वस्तुतः जल कोई मूलतत्त्व है ही नहीं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार जो १०३ भौतिक तत्त्व है, उनमें न्याय वैशेषिक के कल्पित चारों भूतों में से एक भी नहीं है। किन्तु न्याय वैशेषिक ने इस भौतिक जगत् की सृष्टि को समझने-समझाने का प्रयास किया। यह बात ऐतिहासिक मूल्यांकन की दृष्टिसे भी महत्व पूर्ण नहीं। क्यों की उपनिषद् काल से चली आ रही पंच भूतों की अवधारणा को ही संशोधित कर वैशेषिक ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार जगत् के निरूपण के विषय में जो भी विवेचन वैशेषिक दर्शन में आता है, वह विज्ञान की पार्श्वभूमी पर टिक नहीं पाता है।

आधुनिक विज्ञान में माने गए परमाणुवाद से वैशेषिक परमाणुवाद का बहुत अन्तर है। इसके बावजूद यह मानना होगा कि इस दर्शन ने भारतीय दर्शनों में इस दिशा में सबसे आगे बढ़कर कार्य किया। इस में दो मत नहीं हो सकते कि, जैन दर्शन का पुद्गल सिद्धान्त वैशेषिक दर्शन के इस सिद्धान्त की अपेक्षा कहीं कम अन्तरविरोध से युक्त है। फिर भी परमाणुवाद वैशेषिक की दृष्टि में भौतिक सर्ग की रचना के पीछे परमाणु को ही मूल कारण मानता है। अब तक के निष्कर्षों के अनुसार विज्ञान परमाणु में भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन की लीला दर्शाता है। जो क्रमशः उत्पादक, चालक, संहारक के प्रतिक हैं। ठीक वैसे ही वैशेषिक भी परमाणु को क्रियाशील करने में दिव्य शक्ति, दिव्य प्रयत्न की और संकेत करता है। अंततः सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर दोनों के सिद्धांतों में मतैक्यता प्रतित होती है।

प्राच्य ग्रंथों के अनुशीलन से यह पता लगता है कि आधुनिक वैज्ञानिक जिसे परमाणु कहते हैं, उसे तोड़ा भी जा सकता है। वह तत्त्वतः परमाणु नहीं परिभाषित परमाणु है, क्यों कि निरवयव पदार्थ तोड़ा नहीं जाता। वैशेषिक दर्शन

की परमाणु की परिभाषा की कसौटी पर रखकर आधुनिक विज्ञान के परमाणु को परमाणु नहीं कहा जा सकता। इलेक्ट्रॉन व प्रोटॉन को परमाणु कहा जाएगा।

संदर्भ :

१. सांख्यप्रवचन सूत्र - ६१३५-६१३७
२. सांख्यप्रवचन सूत्र - ३१३२
३. सांख्यप्रवचन सूत्र - ५१८७-५१८८
४. गौडपाद भाष्य (कारिका ४२)
५. सांख्यतत्त्व कौमुदि कारिका -१२
६. भारतीय दर्शनशास्त्र -डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री — १३७

6.

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन मूलतः अध्यात्म प्रधान है। फिर भी वह भौतिक चिन्तन से शून्य नहीं है। भारतीय दर्शन में सूक्ष्मतम से महत्तम एवं अणु परमाणु से लेकर स्थूल विराट सृष्टि तक का चिन्तन हुआ है। विशेषतः सांख्य, न्याय, वैशेषिक, जैन तथा बौद्ध दर्शनों में प्राप्त भौतिक चिन्तन आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी मौलिक ठहरता है। आधुनिक विज्ञान ने अपने विकास के साथ साथ अनेक अति महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी प्राप्त की है। वैसे ही भारतीय दर्शनिकों के भौतिक चिन्तन की प्रवृत्तीयाँ एवं उपलब्धियाँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं। जो न केवल भारतीय मनीषा की गरिमा को उदघाटित करती है, बल्कि भौतिक विज्ञान की दृष्टि से भी अपानी उपादेयता को संस्थापित करती है। प्रस्तुत अध्ययन से भारतीय दर्शनों- खास कर सांख्य और वैशेषिक एवं आधुनिक विज्ञान के सृष्टिविषयक विश्लेषण से जो सारांश प्राप्त हुआ, उसका विवेचन निम्नवत है।

1) भौतिक सर्ग के विवेचन में सांख्य दर्शन परिणामवाद के सिध्दान्त को मानता है। यह सिध्दान्त अन्ततः एक ऐसे मूल उपादान पर ले जाता है, जिसका विकार ही यह समस्त संसार है। संसार की सभी वस्तुओं शरीर, इंद्रियाँ, मन, बुद्धि आदि कार्य द्रव्य है। जो कतिपय उपादानों के संयोग से उत्पन्न होते हैं। यह जगत् कार्य कारणोंका प्रवाह है। अतः इस शृंखला का एक मूल कारण होना अत्यावश्यक है।

यह कारण आत्मा या पुरुष नहीं माना जाता। क्योंकि वह वास्तव में न तो किसी वस्तु का कार्य होता है और न ही कारण। इसलिए संसार का कारण आत्मा या चैतन्य से इतर किसी जड़ पदार्थ में खोजना होगा। जो जड़ के साथ साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो, जो अनादि अनन्त और व्यापक रूप से जगत के पदार्थों का कारण हो। जिससे समस्त विषय उत्पन्न होते हैं। इसी मूल को सांख्य दर्शन प्रकृति कहता है। यह सत्त्व, रजस, तमस नामक त्रिगुणात्मक है।

समस्त विषयों का अनादि मूल स्रोत होने से प्रकृति नित्य व निरपेक्ष है। मन, बुद्धि, अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्त्वों का आधार होने के कारण प्रकृति एक गहन, अनन्त और सर्वाधिक सूक्ष्म तत्त्व है। जिसके द्वारा संसार की सृष्टि और लय का चक्र प्रवाह निरन्तर गतिमान रहता है। प्रलयावस्था में भौतिक पदार्थ अपने कारणों में लीन हो जाते हैं और अन्त में संसार की समस्त वस्तुएँ अव्यक्त प्रकृति में लीन हो जाती हैं। प्रकृति किसी कारण का कार्य नहीं है। वह स्वयं होती है। यदि मूल प्रकृति का भी कारण कल्पित किया जाय तो फिर उसका भी कारण कल्पित करना पड़ेगा। इस प्रकार अनवस्था प्रसंग आ जायेगा। कारण कार्य शृंखला में जाकर हमको कहीं ना कहीं तो रुकना पड़ेगा ही। बस उसी आदि कारण को ही सांख्य परा या मूलप्रकृति, प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त आदि नामों से पुकारता है।

सांख्य ने जगत के इस मूल उपादानकारण प्रकृति के विश्लेषण में सत्त्व, रजस, तमस इन तीन गुणों की कल्पना की है। वैसे ही आधुनिक विज्ञान मॅटर(पदार्थ) के विश्लेषण में इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन नामक तीन तत्त्वों की कल्पना करता है। तथा इस जगत की रचना के पीछे इन इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन की लीला के दर्शन कराता है। अतः दोनों के दृष्टिकोन में काफी समानता है। सांख्य के 25 तत्त्वों के साथ ही योग ईश्वर को 26 वाँ तत्त्व मानता है। योग द्वारा ईश्वर तत्त्व मानने से प्रकृतिवाद की गुत्थी और सरल हो जाती है। सांख्य के जड़-चेतन संसर्ग, बन्धन व मुक्ती क्यों? कैसे? किसकी? जैसे प्रश्नों का समाधान

ईश्वर की सत्ता स्वीकारने से सरल हो गया। अतः योग दर्शन का यह एक महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार किया जाना चाहिए।

2) वैशेषिक दर्शन की दृष्टि में भौतिक सर्ग की रचना का मूल परमाणु है। परमाणुओं से जगत की रचना के पीछे ये दर्शन कर्म सिध्दान्त को स्वीकारता है। उनके अनुसार सभी अवयवी संयोगों से निर्मित होते हैं। संयोग व वियोग का कारण कर्म होता है। कर्म द्रव्य में समवेत होता है और गुरुत्व, द्रवत्व, प्रयत्न, संयोग से उत्पन्न होता है। जबकि अन्य सब गुण निर्मित कारण होते हैं। इस प्रकार कर्म सिध्दान्त भौतिक सर्ग के उत्पाद व संसार के लिए तात्त्विक रूप से परमावश्यक है। क्योंकि संसार गमिन है और परिवर्तनशील है, उसकी सब वस्तुओं में परिवर्तन होना चाहिए। ये परिवर्तन कर्म से उत्पन्न होते हैं। वैशेषिक के अनुसार यह कर्म बाहर से आता है। किसी वस्तु के विनाश में यह मानव प्रयत्न द्वारा माता है तथा संसार के विनाश में यह दिव्य प्रयत्न से आता है।

यह कर्म एक नियमित प्रक्रिया से हो कर विनाश को उत्पन्न करता है। जिससे की समस्त अनित्य पदार्थ अन्ततः कर्मद्वारा भिन्न परमाणुओं में अवशिष्ट रह जाते हैं। प्रलय की अवस्था में यह परमाणु एक दूसरे से अलग रहते हैं। और विश्व प्रक्रिया आरंभ होने से पूर्व किसी वस्तु को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। कर्म प्रलय अवस्था में भी विद्यमान होता है लेकिन वह किसी संयोग का उत्पादक नहीं होता है। इस प्रकार के कर्म का उपयोग केवल काल की सीमा का निर्धारण है।

इस प्रकार यह कहा गया कि प्रलयावस्था में विद्यमायन कर्म में किसी भूतद्रव्य को उत्पन्न करने के लिए परमाणुओं का समुह बनाने की क्षमता नहीं है। इस प्रकार का समुह बनाने के लिए अन्य कर्म की आवश्यकता है। इस कर्म को भी किसी चेतन द्वारा उत्पन्न होना चाहिए। क्योंकि प्रलयावस्था में जीवात्मा से इस कर्म को उत्पन्न करने की आशा नहीं की जा सकती। अतः उसके लिए किसी अतिमानवीय शक्ती की उपस्थिती की कल्पना करनी पड़ेगी। जो शक्ती चेतन हो और परमाणुओं में इस प्रकार के कर्म को उत्पन्न करने क्षक्ता रखती हो। वह

अतिमानष चेतन मनुष्य व अन्य प्राणियों के अदृष्ट के प्रमाणानुसार इस कर्म को उत्पन्न करता है।

जब जीवों का समष्टि अदृष्ट फलिभूत होने के लिए परिपक्व अवस्थामें आ जाता है, तब ईश्वर की शाश्वत इच्छा सृजनात्मक हो उठती है और तुरन्त परमाणु मन के चारों तरफ एकत्र हो जाते हैं, तथा प्रत्येक मन के लिए जिवाणु बनाते हैं। इसी दैवि इच्छा से अदृष्ट के द्वारा कर्म की उत्पत्ती होती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि किसी पदार्थ के उत्पन्न होने के पूर्व परमाणुओं में दो प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं।

स्थूल दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों उनमें एक कर्म आन्तरिक है तथा दूसरा बाह्य। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर यह स्पष्ट होता है कि वस्तुतः ये दोनों कर्म बाहर से ही आते हैं। अन्तर केवल समय का है अन्यथा दोनों प्रकार के कर्म चेतन तत्त्व पर ही अवलम्बित हैं। इस प्रकार के कर्म की सहायता से बड़े बड़े अवयव बनाने के लिए परमाणु एकत्र होते हैं और धीरे-धीरे इस सृष्टी का उद्भव होता है।

3) आधुनिक विज्ञान की सृष्टी :

इस दृश्यमान जगत के असंख्य पदार्थों का उपादान कारण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए भारत में सर्वप्रथम पाँच भूतों की कल्पना की गयी। ठीक उसी समय युनान में भी थेलिस ने जल को सृष्टि का कारण माना। इसके शिष्य अँनॉकिङ्गमिनेस ने वायु को और हेरॉक्लीट्स ने आग को मूलकारण माना। इस तरह इसा पूर्व सांतवी शती से लेकर इसा बाद 17 वी शती तक पाँच महाभूतों का बोलबाला था।

प्रिस्टले ने ऑक्सिजन का पता लगाया और बतलाया की आग जलाने तथा श्वास के लिए यह आवश्यक है। आज के मूलतत्त्वों में भी ऑक्सिजन गिनी जाती है। हेन्री क्वेन्डीस ने जल को ऑक्सिजन व हायड्रोजन का समीक्षण सिद्ध किया,

तब से जल के मूलतत्त्व होने की धारणा समाप्त हुआ। जॉन डाल्टन ने सर्वप्रथम मूलतत्त्व और मिश्रित तत्त्व का भेद स्पष्ट किया। मूलतत्त्व अमिश्रित होते हैं, विभिन्न तत्त्वों के परमाणु भार में भिन्नता होती है और यदि उन तत्त्वों को उतने ही परिमाण में मिलाया जाये तो सर्वदा एकसा परिणाम होता है, यह भी सिध्द किया। इस तरहय डाल्टन ने मौलिक तत्त्वों की खोज का द्वार खोला। इस समय इनकी संख्या लगभग 103 है।

इन सब मूल तत्त्वों का अंतिम कल्पित कण परमाणु है। परमाणु के मध्य इलेक्ट्रॉन व प्रोट्रॉन नामक शक्तियाँ निवास करती हैं। इस प्रकार इलेक्ट्रॉन व प्रोट्रॉन को अपने गर्भ में रखने वाला परमाणु ही सृष्टि का मूलतत्त्व सिध्द हो गया। विज्ञान की मान्यताएँ सदैव परिवर्तनशील रही हैं। आज विज्ञान एक नये तत्त्व की चर्चा करने लगी है। जिसे गॉड पार्टिकल नाम दिया जा रहा है। समग्र रूप से अवलोकन करने पर आधुनिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ को 6 अवस्था में बाँटा जा सकता है।

1. ज्ञात विज्ञान की पर्वावस्था।
2. क्वांटम अवस्था।
3. प्लाज्मा अवस्था।
4. नाभिक अवस्था अर्थात् बिग बँग मॉडल।
5. परमाणु अवस्था।
6. दिक् काल युक्त पदार्थमय जगत की अवस्था।
7. गॉड पार्टिकल

उपर्युक्त विवेचन से यह सम्यक रूप से स्पष्ट हो जाता है कि मूलतः दर्शन एवं विज्ञान का एक ही लक्ष्य होता है- सत्य का अनुसंधान। किन्तु दोनों के साधन भिन्न होते हैं। दर्शन अंतर्ज्ञान की शक्ति के आधार पर सत्य तक पहुँचता है तो विज्ञान बौद्धिक शक्ति के आधार पर। दर्शन तर्क के आधार पर निष्कर्ष निकलता है, तो विज्ञान अनुभव अर्थात् प्रयोग के आधारपर। विज्ञान एवं दर्शन भिन्न होते हुए

भी निकट है तथा परम्पर पूरक है। एक स्थिती पर दोनों का भेद विलीन हो जाता है।

भारतीय दार्शनिकों ने अध्यात्मक जगत के साथ सृष्टि तत्त्व एवं उसके उपादान रूप पदार्थ या जड़तत्त्व के सम्बन्ध में भी गंभीर चिन्तन किया है। सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का मूलभूत तात्त्विक अभिप्राय यह है कि सृष्टि का मूल अणु या परमाणु है। जिसे जैन दर्शन ने पुद्गुल कहा। आधुनिक विज्ञान भी इस मत से सहमत है। आधुनिक विज्ञान की गति स्थूल से सूक्ष्म के अध्ययन प्रति है। सूक्ष्म से स्थूल की ओर आना ही सृष्टि है।

विज्ञान के अध्ययन का आरम्भ स्थूल पिण्ड आदि के अध्ययन से होता है। फिर उसका विभाजन विश्वेषण फिर उसका विभाजन विश्लेषण। इस तरह उसके मूलतत्त्व अणु परमाणु तक पहुँचता है। जबकि दर्शन के अध्ययन का आरम्भ ही उस पिण्ड के सूक्ष्म तम कण अणु या परमाणु से होता है। विज्ञान जिसे परमाणु मानता है दर्शन उसे परमाणु से भी परे एक शक्ती तत्त्व को स्वीकारता है जो परमाणु में गति उत्पन्न करता है। विज्ञान भी परमाणु के मूल में इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन को मानता है किन्तु इनका जन्मदाता कौन है? विज्ञान यह नहीं बतला सका है। अन्ततः विज्ञान को भी दर्शन के अन्तिम सत्य सर्व खलिवं ब्रह्म या अज्ञात तत्त्व में आकर विश्राम करना पड़ता है। इस प्रकार दर्शन व विज्ञान परस्पर भिन्न होकर भी अन्त में एक ही महासागर में लीन हो जाते हैं।

दर्शन का मुख्य कार्य है किसी भी विषय के बारे में चिंतन करना तथा उसी विषय के बारे में कुछ अवधारणाएँ बनाना। विज्ञान का कार्य है उन्ही अवधारणाओं को प्रत्यक्ष अनुभव अथवा प्रयोग के आधारपर प्रमाणित करना। वर्तमान में विज्ञान के बहोत से सिध्दान्त ऐसे हैं जिनकी अवधारणाएँ हमें विभिन्न दर्शनों से प्राप्त होती हैं। सृष्टि निर्माण विषय में आधुनिक विज्ञान का मत सांख्य तथा वैशेषिक दर्शन के दृष्टि निर्माण विषयक मतों का समन्वय है।

संदर्भग्रंथ :

- १) प्लेटो - चरीत्र व तत्त्वज्ञान - गो.वि.तुळपुळे - चित्रशाळा प्रकाशन, पुणे - १९६०
- २) आधुनिक विज्ञान में भारतीय दर्शन का सृष्टीवाद- डॉ. हुकमसिंह निर्भय-शर्मा पब्लीशर्सिंग हाऊस जयपूर- २००१
- ३) भारतीय दर्शन की समस्याएँ - डॉ. जयदेव वेदालंकर-प्राख्य विद्याशोध प्रकाशन, हरिद्वार - १९८६
- ४) पाश्चात्य तत्त्वज्ञानातील द्रव्य संकल्पना -डॉ. सुनील साळुंके - मैत्री प्रकाशन, लातूर(महा.) २०१२
- ५) भारतीय दर्शन की रूपरेखा-प्रो. हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा मोतीलाल बनारसी दास- २०१०
- ६) भारतीय दर्शन शास्त्र-डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री
- ७) भारतीय दर्शन-डॉ. महेन्द्रकुमार मिश्रा, अर्जुन पब्लीशर्सिंग हाऊस, नई दिल्ली. २००९
- ८) भारतीय दर्शन-जदुनाथ सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास पल्बिशर्स, दिल्ली- २००८
- ९) भारतीय दर्शन-सरल परिचय-देवी प्रसाद चटोपाध्याय-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली २००४
- १०) भारतीय दर्शन-एक अनुशीलन-प्रो. शर्मा केशव आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली-१९८६.

+x^aE OÉÆlÉ :

उपयोजित नीतिशास्त्र

तत्त्वचिंतक चार्वाक

पाश्चात्य दर्शन के संप्रदाय

भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन

समकालीन पाश्चात्य दर्शन

समाज एवं राजनिती दर्शन

भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन एवं संस्कृती

बौद्ध दर्शन एवं वेदांत

सामाजिक शा.स.सि.कोश तत्त्वज्ञान

भारतीय ज्ञानमिमांसा

उपयोजित नीतिशास्त्र

समाज और राजनितीदर्शन एवं धर्मदर्शन

पाश्चात्य दर्शन का समग्र इतिहास

नीतिशास्त्र की रूपरेखा

दर्शन के आयाम

समकालीन पाश्चात्य दर्शन

पाश्चात्य दर्शन के संप्रदाय

दर्शनशास्त्र की रूपरेखा

पाश्चात्य दर्शन

भारतीय दर्शन की रूपरेखा
तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानामिमांसा
पाश्चात्य दर्शन का ऐतिहासिक सर्वे
वैज्ञानिक प्रविधि एवं तर्क
भारतीय दर्शन की मूलगामी समस्याएँ
अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र
भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन
भगवान् बुद्धांचा जनवादी धर्म
तत्त्वज्ञानाची रूपरेषा
धर्मचे तत्त्वज्ञान
नीतिशास्त्र
निरीश्वरवाद
पाश्चात्य तत्त्वज्ञानातील द्रव्य संकल्पना
Reflections of a wakeful mind
Outlines of Indian Philosophy
Metaphysics
Indian Philosophy
Vedic Philosophy